आईन के पत्र



कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

सामयिक साहित्य-माला । १६ वाँ पुष्प । संपादक—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

बहिन के पत्र

अथवा

पारिवारिक समस्याएँ

लेखक

श्री० कृष्णचंद विद्यालंकार
संपादक—साप्ताहिक 'वीर अर्जुन'

प्रकाशक

सामयिक साहित्य सदन, लाहौर

प्रकाशक :—
उमाशंकर त्रिवेदी एम० ए०,
व्यवस्थापक—सामयिक साहित्य-सदन,
चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

मूल्य ३)

मुद्रक—
ला० खुशहालचन्द 'आनन्द'
वीर मिलाप प्रेस, लाहौर।

जीवन-संगिनी श्रीमती ईश्वरदेवी को

विषय-सूची

प्रारंभिक शब्द

प्रत्येक नवयुवक या युवती अपने भावी गृहस्थ-जीवन और विवाह का ध्यान करते ही सुनहले स्वप्नों की दुनिया में विचरने लगता है। विवाह होगा, उनके हृदय-मन्दिर का देवता आयगा, वे दोनों एक अलौकिक आनन्द में विभोर हो जायँगे। उस प्रेम की दुनिया में युवती रानी होगी—सुन्दर अप्सरा सी, और युवक राजा होगा—बलिष्ठ, तेजस्वी, सुन्दर और सहानुभूतिपूर्ण, सहृदय। दोनों अपने में मस्त होंगे और इस संसार के आनन्द-सुख का उपभोग करेंगे। वे दोनों अपने समस्त प्रेमल हृदय को एक दूसरे के समर्पण कर देंगे। नई उमंगों, कोमल कल्पनाओं और अरमानों की दुनिया का विचार ही प्रत्येक युवक या युवती के हृदय में गुदगुदी पैदा कर देता है। उसे सारी दुनिया ही आनन्दमय दीखने लगती है। सूर्य, पृथ्वी, चाँद और तारे, नदी, खेत और वृक्ष—सभी उसके

काल्पनिक साम्राज्य के आनन्द को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि विवाह के प्रारंभिक दिनों में युवक या युवती को अपने ये मधुर और सुनहले स्वप्न पूर्ण होते प्रतीत होने लगते हैं। यौवन और तारुण्य का उन्माद, अथवा सुन्दर सा प्रेमी सखा, बस दोनों अपनी छोटी सी दुनिया में सब कुछ भूल कर मस्त हो जाते हैं, मानो दुनिया में कहीं दुःख का नाम ही नहीं है।

लेकिन

कुछ समय बीतता है, चार-छः महीने, या एक-दो बरस। दोनों समझने लगते हैं कि उनके सुनहले और मधुर स्वप्न झूठे थे, वह केवल एक कल्पना थी, सचाई का उनमें नाम न था। यह संसार सुख और आनन्द का संसार नहीं है। मौज-बहार की दुनिया नहीं है। विवाह और गृहस्थ-जीवन फूलों की सेज नहीं है। इसमें तो दुःख है, पारस्परिक कलह है, झाड़ियाँ हैं, काँटे हैं और चिन्ताएँ हैं। पति-पत्नी का पारस्परिक आकर्षण कम होता जाता है और गृहस्थ-जीवन का वह दूसरा पहलू सामने आता जाता है, जिस की विवाह के पूर्व उनमें से किसी ने कल्पना भी न की थी। उनकी कोमल कल्पनाओं पर संसार की कठोर और नग्न समस्याएँ हावी हो जाती हैं। प्रेम के आकर्षण का स्थान नीरस कर्तव्य ले लेता है। यौवन और प्रेम का नशा उतर जाता है और कल्पनाओं का वह मधुर संसार,

जिसका रस लेने के लोभ में विवाह किया था, लुप्त हो जाता है। वही पति या पत्नी, जिसका चेहरा देखते वे कभी थकते न थे, जिसके मुँह से एक शब्द सुनने के लिए तरसते थे, और जिसके पास से वे एक क्षण भी जुदा न होना चाहते थे, अब कुछ कुछ अप्रिय मालूम होने लगते हैं। अधिकांश घर आमोद-गृह न होकर अप्रिय वाद-विवाद, कलह और संघर्ष के क्षेत्र बन जाते हैं।

आखिर क्यों ?

आखिर इस परिवर्तन का कारण क्या है ? सुनहले स्वप्नों की यह दुनिया क्यों इतनी जल्दी नष्ट हो जाती है ? क्यों युवक और युवती के अरमान इतनी जल्दी हवा में मिल जाते हैं और आनन्द-निकेतन घर क्यों कलह और संघर्ष की नरक-भूमि बन जाता है ?

क्या मनुष्य की आर्थिक चिन्ता विवाहित जीवन के रस और आकर्षण को नष्ट कर डालती है ? साधारणतः इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में देने को मन चाहता है। कपड़ों, जेवरों तथा भोजन और बच्चों के पालन-पोषण आदि में जब आर्थिक संकट आकर बाधक बन जाता है, तब घर में चिन्ता और कलह का प्रवेश अत्यन्त स्वाभाविक है। एक ओर रोटी के लाले पड़ रहे हों, कल कैसे गुजर होगी यह चिन्ता सता रही हो, तब मीठे सुपने कहाँ याद रह सकते हैं। वह सारी सुनहले

स्वप्नों की दुनिया आर्थिक चिन्ताओं की चट्टान से टकरा कर टूटती चली जाती है। इस बात में एक हद तक सचाई हो सकती है, लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है। केवल साधारण आर्थिक स्थिति के लोगों का ही गृहस्थ-जीवन दुःखी नहीं होता, सम्पन्न लोगों के घरों में भी, जहाँ रुपये-पैसे की कोई कमी नहीं है, पति-पत्नी का दाम्पत्य-जीवन शनैः शनैः अप्रिय और कटु होने लगता है। दोनों ने ही जिन उमंगों और अरमानों की दुनिया के सपने लिये थे, वे सब बिखरते से मालूम पड़ते हैं। कभी कभी तो यह देखा जाता है कि साधारण लोगों की अपेक्षा सम्पन्नवर्ग का दाम्पत्य-जीवन अधिक दुःखपूर्ण होता है, आर्थिक स्थिति का गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने में भाग होता है, इस सचाई से इन्कार न करते हुए भी, इसे बहुत अधिक महत्त्व देना भूल होगी।

तब फिर विवाहित जीवन क्यों कुछ समय बाद नीरस मालूम होने लगता है, क्यों उस में आनन्द का स्थान दुःख और चिन्ता लेने लगते हैं? क्यों आनन्द-निकेतन पर कलह की भूमि सा अनुभव होने लगता है? क्यों पति-पत्नी का परस्पर प्रेम और आकर्षण कम होने लगता है? और क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे दाम्पत्य जीवन को सदा सुखी और प्रसन्न रखा जा सके?

इन्हीं सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक का यह विश्वास है कि दाम्पत्य जीवन में यदि

कुछ कटुता आ जाती है, कुछ चिन्ताएँ घर करने लगती हैं, तो उन्हें पति-पत्नी अपनी दूरदर्शिता तथा कुछ सावधानताओं के द्वारा रोक सकते हैं। यदि दोनों यह दृढ़ निश्चय कर लें कि उन का जीवन आदर्श रहेगा, वे दाम्पत्य जीवन के नियमों का पालन करते रहेंगे, तो उनका गृहस्थ जीवन सदा आनन्दमय रह सकता है। हम अपने अज्ञान या अपनी असावधानता के कारण बहुत सी ऐसी भूलें कर बैठते है जिनसे सोने का यह ससार मिट्टी बन जाता है। इस पुस्तक में मैंने यह प्रयत्न किया है कि मैं इन भूलों और उनके उपायों का निर्देश कर दूं, जिन के न जानने या जिन पर ध्यान न देने से दम्पती दुःख पाते हैं। मुझे यह विश्वास है कि यदि दम्पती अपने कर्तव्य और उससे बढ़कर गृहस्थ जीवन में उठने वाली कठिनाइयों और समस्याओं को, जिनका इस पुस्तक में उल्लेख किया गया है, समझ लें, तो वे अपने जीवन को और अधिक सुखी व आनन्दमय बना सकेंगे।

यह पुस्तक क्यों ?

दाम्पत्य जीवन के सबन्ध में अनेक पुस्तकें पहले भी हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी है। इस में सन्देह नही कि उन पुस्तकों के मान्य लेखकों ने अपने दृष्टि-कोण से इस समस्या पर पर्याप्त विचार किया है। लेकिन इस के बावजूद मै यह अनुभव करता हूँ कि गृहस्थ जीवन में समय समय पर उठने वाली अनेक

व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर उनका ध्यान कम गया है और सामान्य सिद्धान्तों तक ही उनका क्षेत्र सीमित रहा है। मैंने जहाँ उन सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा की है, जिन के पालने के बिना गृहस्थ जीवन किसी तरह सुखी नहीं रह सकता, वहाँ मैंने व्यावहारिक कठिनाइयों और समस्याओं पर अधिक ध्यान देने का प्रयत्न किया है।

गृहस्थ-जीवन की व्यावहारिक समस्याओं की चर्चा करते हुए यह स्वाभाविक था कि मैं कल्पना की उड़ान भरने की अपेक्षा अपने आस-पास या पड़ोस-पड़ोस को देखूँ। मैंने इसमें गृहस्थ-जीवन के अनेक उदाहरण दिये हैं। वे प्रायः सत्य हैं और स्वभावतः अपने मित्रों तथा परिचित गृहस्थों के हैं, जहाँ कि मेरा आना-जाना अधिक था। ऐसा करते हुए उनके दिलों को दुखाने की मेरी क़तई मंशा नहीं है और यदि किसी मित्र को यह प्रतीत हो कि पुस्तक में उस पर कोई कटाक्ष किया गया है, तो मैं उससे क्षमा-प्रार्थना चाहूँगा। मैं वस्तुतः उन मित्रों का कृतज्ञ हूँ, जिनके यहाँ आने-जाने से मुझे गृहस्थ-जीवन की समस्याओं का अध्ययन करने का अवसर मिला है। ऐसे उदाहरण देने का यह अर्थ कभी नहीं है कि उनका जीवन अत्यन्त दुःखमय है। उनमें एक त्रुटि रहते हुए भी बीसियों गुण हैं, जिनके कारण मैं उनका आदर करता हूँ अथवा उनके स्नेह में बँधा हुआ हूँ। व्यावहारिक समस्याओं की चर्चा ठीक तरह से हो सके, इसके लिए मुझे

अपने परिचित सज्जनों की असली कठिनाइयों की चर्चा के बिना कोई दूसरा मार्ग अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ा। गृहस्थ-संबंधी अनेक पुस्तकों के अध्ययन और उनकी सहायता के लिए भी मैं उनके लेखकों का कृतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक न लिखी जा सकती, यदि मुझे इसके लिखने में अपनी जीवन-संगिनी श्रीमती ईश्वर देवी का पूर्ण सहयोग प्राप्त न होता। वस्तुतः इसके अनेक अध्याय के अध्याय उन्ही के बताये हुए हैं, उन्हें मैंने केवल भाषा का कलेवर दिया है। स्त्रियों की समस्याओं को वह अधिक अच्छी तरह समझें, यह स्वाभाविक भी है। बहुत से उदाहरण तो उन्हीं के बताये हुए हैं, जिन्हें एक पुरुष के लिए जानना कठिन है।

बहनों से दो शब्द

इस भूमिका को समाप्त करने से पूर्व मैं दो-चार शब्द इस पुस्तक की पाठिकाओं से अवश्य करना चाहता हूँ।

यह पुस्तक स्त्रियों के लिए लिखी गई है। इसमें उन्ही के कर्तव्यों का ज्ञान कराया गया है। इससे मेरा यह अभिप्राय कभी नही कि दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने का उत्तरदायित्व केवल स्त्री पर है, यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि पुरुष की अपेक्षा वह अधिक सरलता और अधिक सौंदर्य के साथ अपने अनेक गुणों के द्वारा इस उत्तरदायित्व को निभा सकती हैं। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष का गृहस्थ जीवन में कोई

कर्तव्य नहीं है। इसके विपरीत मैं यह मानता हूँ कि आज के दाम्पत्य जीवन को दुःखपूर्ण बनाने में नारी की अपेक्षा पुरुष का ही अधिक भाग है और इसलिए उसे ही दाम्पत्य जीवन को सफल करने की ओर अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए। लेकिन फिर भी पहले स्त्रियों के लिए यह पुस्तक लिखने के दो कारण हैं:—

पहला तो यह कि स्त्रियों को समझाना अधिक आसान है, वह ज्यादा सहानुभूति और सहृदयता से पुस्तक को पढ़ेंगी। दूसरा कारण यह कि दुर्भाग्य से आज भारतीय नारी भी पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में पड़कर अपने कर्तव्य को भूलती जा रही है।

मेरा दृष्टि-कोण

आज भारतवर्ष में जिन पुरानी और नई विचार-धाराओं और संस्कृतियों का संघर्ष हो रहा है, समाज के प्रत्येक अंग में जो नया क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है, उसे देखते हुए आज की नारी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गई है—दुविधा में पड़ गई है। वह एक ओर सीता, सावित्री और दमयन्ती के आदर्श चरित्र पढ़ती है, दूसरी ओर वह नये समाज और नई दुनिया को देखती है, जिसमें समाज उससे कुछ ऐसी चीज़ माँगता प्रतीत होता है, जिसकी शायद सीता, सावित्री और गांधारी से कभी अपेक्षा नहीं की गई थी। पहले नारी

केवल अपने परिवार तक और उसमें से भी एक संकुचित क्षेत्र तक सीमित थी, उससे बाहर की दुनिया से उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था। लेकिन अब दुनिया बदल गई है, जो थोड़ी-बहुत कमी है वह भी बहुत तेज़ी से पूरी हो रही है। पुरुष खुद नये पाश्चात्य आदर्शों और पाश्चात्य वातावरण में रहने का आदी हो रहा है। वह अपनी जीवन-संगिनी से भी यही अपेक्षा करता है। नारी जानती है कि उसे अपने पुराने संस्कारों को बिलकुल तिलांजलि देनी पड़ेगी। पुरुष समाज की इच्छा के साथ-साथ इन नये जीवन की चमक और चकाचौंध का भी आकर्षण उसे लुभाता है। नारी जो अब तक घर की चारदीवारी में बंद थी, बाहर के उत्सुक और प्रसन्न वातावरण को पाकर यदि उस ओर आकृष्ट हो जाय, और कुछ अपने कर्तव्यों में शिथिल हो जाय, तो यह अत्यन्त स्वाभाविक है। इसके लिए उसे दोष नहीं दिया जा सकता। लेकिन केवल ऐसा कहने से तो समस्या हल नहीं हो जाती, पारिवारिक प्रश्नों का समाधान नहीं हो जाता।

नई समस्याओं और नई परिस्थितियों का समाधान भी नये दृष्टिकोण से करना होगा। लेकिन ऐसा करते समय यह तो सोचना होगा कि हम जिस नई विचार धारा और संस्कृति में बहे जा रहे हैं, वह कहाँ तक मानव-समाज की समस्याओं का हल करती है, उसके अनेक गुणों को ग्रहण करते हुए भी

यह तो आवश्यक नहीं है कि उसके समस्त दोषों को भी उसी आदर के साथ स्वीकार किया जाय। यदि आज की नई परिस्थिति में नवीनता का त्याग असंभव हो तो उसे उसी सीमा तक क्यों न लिया जाय, जहाँ तक वह उपादेय है, और प्राचीन आदर्शों के साथ उसका समन्वय किया जाय। मेरा यह विश्वास है कि सभी प्राचीन आदर्श त्याज्य नहीं हैं। और मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस विश्वास का मूल कारण अन्ध श्रद्धा नहीं है। प्राचीन काल के स्मृतिकारों ने अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक आदर्शों और कर्त्तव्यों का उपदेश दिया था, जो आज भी समय-भेद के कारण कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार किये जा सकते हैं।

इसलिए यदि इस पुस्तक की पाठिकाओं को इसमें कहीं ऐसी गन्ध आ जाय, जिसमें नारी के किन्हीं प्राचीन आदर्शों को स्वीकार करने के औचित्य पर विचार किया गया हो, तो वह उसे बहुत हलके भाव से न लें। मैंने जो कुछ लिखा है, वह यह जानते-बूझते लिखा है कि यह पुस्तक उन युवतियों के हाथों में जायगी, जो बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रवेश कर रही हैं।

आज की प्रगतिशील नारी भी

प्राचीन काल की नारी पर पुरुष समाज ने अत्याचार किये थे और इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा और बाहर के

उन्मुक्त स्वस्थ वातावरण से वंचित करके उसने नारी की स्थिति एक क़ैदी से भी हीन कर दी थी। वह चूँ तक नहीं कर सकती थी, उसका पति चाहे नपुंसक, कोढ़ी, वेश्यागामी और पापी क्यों न हो, नारी को उसके वशवर्ती रहना पड़ता था और उसकी वासनाओं का शिकार होना पड़ता था। यह स्थिति अत्यन्त हीन है और आज किसी भी स्थिति में उसे एक क्षण के लिए भी सहन नहीं किया जा सकता। लेकिन दूसरी ओर यह भी सत्य है कि आज की नारी की स्थिति ऊपर से कितनी ही अच्छी क्यों न दीखती हो, वस्तुतः आज भी वह पुरुष की वासना का शिकार हो रही है। एक सुशिक्षित महिला के शब्दों में "आज की प्रगतिशील नारी केवल वासना-पूर्ति का साधन मात्र रह गई है। स्वतंत्रता देकर प्रिय के नाम पर कामुक पुरुष उस पर हावी होना चाहता है। क्लबों में, सोसाइटी में और अन्य जगह वह नारी के साथ उन्मुक्त होकर विचरण करता है। वह नारी को अपने साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए प्रोत्साहित करता है और अन्ततोगत्वा वह उसे सुनहले स्वप्न दिखाकर अपने मनचाहे मार्ग पर ले जाता है। वह उसे पत्नी के रूप में नहीं, संगिनी साथी के रूप में रखना चाहता है, क्योंकि वह स्वयं भी किसी बंधन में पड़ना नहीं चाहता।"

आज की प्रगतिशील नारी जब पुरुष को संसार के बड़े बड़े साहसिक कार्य करते देखती है, तो उसका हृदय भी

सैन्य दल की कहानी अवैध सन्तान, भ्रूण-हत्या, बलात्कार और गुप्त बीमारियों की करुण कहानी है। दूसरे भी अनेक सरकारी महकमों में आज स्त्रियों को बड़े बड़े वेतन का आकर्षण मिला है और हज़ारों की संख्या में स्त्रियाँ अपने घर-परिवार को नौकरों के भरोसे छोड़कर पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर रुपया कमाने में लग गई हैं। उन्हें रुपया तो मिल रहा है, लेकिन आज के दूषित समाज के दूषित वातावरण में वे अपनी उन मर्यादाओं की ओर से भी कुछ शिथिल हो गई हैं, जो किसी पारिवारिक जीवन की सफलता और शान्ति के लिए आज बीसवीं सदी में भी आवश्यक हैं। युद्ध-काल में उत्पन्न इन नई परिस्थितियों का जो व्यापक प्रभाव हमारे समाज और विशेषकर हमारे पारिवारिक जीवन पर पड़ा है, उसकी गंभीरता को अभी तक हम समझ नहीं पा रहे हैं। लेकिन एक बात स्पष्ट है। पारिवारिक जीवन तो आत्म-समर्पण का दूसरा नाम है—स्त्री और पुरुष दोनों के लिए प्राचीन संस्कृति का यही आदर्श है, भले ही पुरुष अपनी निरंकुशता और पाशविक बल के कारण इस मर्यादा से अपने को ऊँचा समझता रहा। कुछ इसकी प्रतिक्रिया और कुछ नई परिस्थितियों ने आज नारी में भी आत्मसमर्पण की भावना के प्रति विरक्ति और घृणा भर दी है। इसका परिणाम पारिवारिक जीवन पर प्रतिकूल पड़ने लगा है। यूरोप में तलाकों की संख्या में लगातार वृद्धि और भारत के शिक्षित नारी-समाज

द्वारा तलाक के अधिकार की माँग इसका प्रमाण है।

इसलिये मैंने यदि इस पुस्तक में नारी को पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए—पाप-पुण्य का ख्याल छोड़कर—आत्मसमर्पण, विनय और मर्यादा पालन की सलाह दी है, तो यह केवल दकियानूसीपन नहीं है। यह आज की भी उसी भाँति आवश्यकता है, जिस तरह यह पहले थी। लेकिन इसके साथ ही मैं यह फिर स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष को मैं आत्मसमर्पण की राय नहीं देता, उसे तो मैं और भी अधिक शक्ति के साथ इस की सलाह दूँगा, क्योंकि इस दिशा में प्रधान अपराधी वही है, लेकिन इसकी चर्चा तो अपनी उस आगामी पुस्तक में करूँगा, जो यदि इस पुस्तक का स्वागत हुआ, तो पुरुषों के लिए लिखने का विचार है।

मैं अपनी सुशिक्षित बहिनों से यह अनुरोध करूँगा कि वे धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य और शास्त्र-अशास्त्र का ख़याल छोड़कर केवल समाज की स्थिरता और पारिवारिक जीवन की शान्ति के दृष्टिकोण से नारी के स्वाभाविक गुण देखते हुए अपने उचित कार्य-क्षेत्र पर गंभीर विचार करें। उनकी स्थिति पुरुष से किसी भाँति हीन नहीं है, बल्कि वह पुरुष से भी महान् है, उसका समाज में आदर भी अधिक होना चाहिए, उसका कार्य पुरुष की अपेक्षा किसी कदर कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ कभी नहीं है कि वह अपने गौरवमय कार्य को—मातृत्व को—जिसमें नारी का चरम विकास है, छोड़कर

उसी लीक पर चलना पसन्द करे जिस पर पुरुष चलता है। अपने महान् कार्य-क्षेत्र को छोड़कर पुरुष की अन्धाधुन्ध नकल करना स्वयं अपनी हीनता (Inferiority) को स्वीकार करना है। महात्मा गांधी स्त्रियों की स्वतंत्रता के बहुत बड़े समर्थक हैं। पिछले राष्ट्रीय अन्दोलन में स्त्रियों को जागृति का संदेश देकर उन्होंने भारतीय नारी को एक सदी आगे बढ़ा दिया है। इसलिए कोई उन पर स्त्रियों का विरोधी होने का आक्षेप नहीं कर सकता। उनका उद्धरण देकर मैं इस प्रकरण को यहीं समाप्त करूँगा। वह लिखते हैं:—

'मेरे मत से स्त्री को,घर छोड़कर, घर की रक्षा के निमित्त कंधे पर बंदूक धरने के लिए आह्वान करने पर अथवा इसके लिए उसे प्रोत्साहित करने पर,स्त्री और पुरुष दोनों का ही पतन होगा। यह तो फिर से जंगली बनना और विनाश का प्रारंभ हुआ।······अपने घर को सुव्यवस्थित और सुदशा में रखने में भी उतनी ही वीरता है, जितनी उसकी बाहर से रक्षा करने में है।"

पत्रों में

यह पुस्तक पत्रों के रूप में लिखी गई है— बड़ी बहिन द्वारा छोटी बहिन को। बहिन अधिक स्पष्टता के साथ अपनी बहिन को जो कुछ बता सकती है, वैसा माता या भाई अथवा अन्य आत्मीय नहीं। पत्रों में आत्मीयता और सहृदयता का भाव प्रधान रहता

है, पत्र उपदेश के रूप में नहीं, सलाह के रूप में लिखे जाते हैं, व्यावहारिक प्रश्नों पर स्वभावतः उनमें अधिक चर्चा रहती है। मेरा प्रधान लक्ष्य आजकल की मध्यवित्त समाज की ऐसी युवती रही है, जो कुछ शिक्षित हो, नई दुनिया और उसके विचारों से जानकार हो। साधारणतः इसी समाज की स्त्रियाँ ही इस पुस्तक को पढ़ेंगी। इसलिए प्रधानतः इन्हीं की समस्याओं पर विशेष विचार किया गया है।

काम-शास्त्र का साधारण ज्ञान मैं पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए आवश्यक मानता हूँ। लेकिन इस पुस्तक में उसकी चर्चा मैंने जान-बूझकर नहीं की। वह एक स्वतंत्र विषय है और उसका उल्लेख इस पुस्तक में शायद उचित भी न होता।

एक अनुरोध

अन्त में एक अनुरोध पाठिकाओं और पाठकों से। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद वे यदि कोई परामर्श देना चाहें, या नई पारिवारिक समस्या पेश करना चाहें, तो मैं उसका सहर्ष स्वागत करूँगा। यदि कुछ उपयोगी परामर्श आये, तो मैं उनका पुस्तक के द्वितीय संस्करण में अवश्य उपयोग करने का प्रयत्न करूँगा।

यह पुस्तक दो वर्ष पूर्व प्रारंभ की गई थी और ८-१० पत्र उस समय लिखे भी गये थे। अनिवार्य बाधाओं तथा अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण बीच के डेढ़ वर्ष तक आगे एक

भी पंक्ति नहीं लिखी गयी। अब भी शायद यह पुस्तक जल्दी पूर्ण न की जाती, यदि मेरे परम स्नेही मित्र श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी का इसे जल्दी प्रेस में देने का तीव्र अनुरोध न होता। वस्तुत: उन्हीं की प्रेरणा पर यह पुस्तक लिखी भी गयी है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यदि इस पुस्तक से कुछ भी परिवारों ने अपने गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने में सहायता प्राप्त की, तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

दिल्ली
१ चैत्र सुदी, २००२ वि० } —कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

विवाह का प्रश्न

प्रिय इन्दु,

दो-तीन दिन हुए तुम्हारा पत्र मिला। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि तुम काश्मीर की यात्रा से सकुशल घर वापिस आ गई हो।

वहाँ के मनोहर रमणीय दृश्यों, पर्वतों की हिमावृत उत्तुंग चोटियों, ऊँची ऊँची घनी वृक्ष-मालाओं, कलकल निनाद करने वाले पर्वतीय झरनों, तथा डल और वुलर झील के अनन्त जल-सागर के विविध दृश्यों और मानव तथा प्रकृति-द्वारा निर्मित सौन्दर्य के अखण्ड स्रोतों की स्मृति आज भी तुम्हारे हृदय में बार बार चित्रित हो जाती होगी। सचमुच काश्मीर इस संसार का स्वर्ग ही है।

हमारा भारतवर्ष समस्त संसार का स्वर्ग है और भारत वर्ष का स्वर्ग है काश्मीर, जहाँ नगाधिराज हिमालय अपनी

हिमधौत उत्तुंग शिखरों के साथ भारत के किरीट-मुकुट की भाँति शोभायमान हो रहा है। मैं भी दो साल पूर्व काश्मीर गई थी, मैं अब तक भी वहाँ के अभिराम दृश्यों को नहीं भूल-पाती। माता जी और पिता जी स्वस्थ होंगे। हरि, शिव और शीला ने रास्ते में कष्ट तो नहीं दिया ? पिस्सुओं और खटमलों ने किसी को परेशान तो नहीं किया ?

मैं यह पत्र एक विशेष उद्देश्य से लिखने बैठी थी। पूज्य पिता जी का पत्र कुछ दिन हुए मिला था। उससे मालूम हुआ था कि वे अब तुम्हारे विवाह के लिए उत्सुक हैं। आखिर तुम अब सयानी हो गई हो। शिक्षा भी तुमने अच्छी प्राप्त की है। अंग्रेजी की मैट्रिक, हिन्दी की प्रभाकर और साहित्य-रत्न तथा संस्कृत की शास्त्री इतनी परीक्षाओं में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हो चुकी हो। तुम्हारा अबोध शैशव बीत गया। अध्ययन-काल भी समाप्त हो गया। अब नये जीवन और नये आश्रम में प्रवेश करने का समय है, ऐसी स्थिति में यदि माता-पिता विवाह की चिन्ता करें, तो यह अत्यन्त स्वाभाविक है। उन्होंने तुम से बहुत संभवतः बातें भी की हैं। लेकिन तुम सहज-संकोच के कारण इस प्रश्न को सदा टाल जाती हो। वे भी तुमसे इस नाजुक विषय पर बातें करते संकोच अनुभव करते हैं। पिता जी के संकोचशील स्वभाव से तुम भली भाँति परिचित हो। माता जी के सामने भी तुम अपने हृदय की बात स्पष्ट करके नहीं कह सकोगी, यह समझकर वे स्वयं बार बार

इस प्रश्न को नहीं उठाती, फिर आजकल की नवशिक्षिता अपटूडेट लड़कियों की अनेक अप्रिय घटनाएँ सुनकर वे यह भी शायद निश्चित नहीं कर पातीं कि तुम किस तरह उनकी इस चर्चा का उत्तर दोगी। इसीलिए मैं ही तुम्हें पत्र लिख रही हूँ।

पहले विवाह के संबंध में माता-पिता लड़के-लड़कियों से कुछ पूछते नहीं थे। वे स्वयं ही उचित अवसर देखकर सब आवश्यक बातों का निर्णय करके अपनी संतान का विवाह कर देते थे। संतान को उसमें ननुनच करने का अधिकार नहीं था। वे अपने माता-पिता के निर्णय को बिना किसी प्रतिवाद के स्वीकार कर लेते थे, उनके सामने कोई दूसरा मार्ग ही न था। समाज की ऐसी ही व्यवस्था थी। किन्तु अब ज़माना बदल गया है, या बदल रहा है। अब शिक्षा पाकर नवयुवक और नवयुवतियाँ स्वयं अपनी योग्यता पर विश्वास करने लगे; उनमें आत्माभिमान और स्वावलम्बन की भावना का जाग्रत होना स्वाभाविक है और इसीलिए यह भी स्वाभाविक है कि वे विवाह के प्रश्न पर, जिस पर उनके समस्त जीवन के सुख-दुःख का दारोमदार है, स्वयं अपनी बुद्धि से—अपने दृष्टिकोण से विचार करें। निस्संदेह उनका दृष्टिकोण उनके वयोवृद्ध माता-पिता के दृष्टिकोण से भिन्न होगा। उनका यह कहना है कि जिस साथी के साथ हमें अपना सारा जीवन व्यतीत करना है उसका चुनाव करने की हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए। ...

लिए हम माता-पिता की इच्छाओं या उनके द्वारा डाले गये सब बंधनों को चुपचाप मानने के लिए किसी भी तरह विवश नहीं हैं। इस विषय में हम स्वतंत्र हैं और स्वतंत्रता ही चाहेंगे। मैं यह मानती हूँ कि आजकल के युवक और युवतियाँ यदि यह विचार करती हैं, तो इसके लिए उन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता। उनकी उच्च शिक्षा, उनका उभरता हुआ यौवन, उठती हुई नई नई उमंगें और कल्पना की हवाई उड़ान, ये सब उन्हें इसी दिशा में विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं।

लेकिन क्या इसका यह अर्थ है कि माता-पिता की इच्छा और वयोवृद्ध गुरुजनों के, जिनके बाल इस दुनिया के तरह तरह के सैकड़ों अनुभव उठाने के कारण पक गये हैं, विचारों का कोई मूल्य नहीं। यह ठीक है कि संसार में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिन्होंने दहेज या जात-पाँत आदि के फेर में पड़कर अपनी संतान का विनाश कर दिया है, उसकी इच्छाओं और स्वप्निल आदर्शों तथा उनके हृदय-दर्पण को चूर-चूर कर दिया है, किन्तु ऐसे माता-पिता अँगुलियों पर ही गिने जा सकते हैं। साधारणतः माता-पिता के हृदय में अपनी सन्तान के प्रति जो वात्सल्य, ममता और मोह होता है, इसके कारण वे कभी उसका अहित नहीं सोच सकते। यह दूसरा प्रश्न है कि समाज की प्रचलित व्यवस्था और अपनी पुरानी धारणाओं के अनुसार वे तुम से विभिन्न सम्मति रखते हों। परन्तु उन की सदिच्छा, सद्भावना और

हित-बुद्धि पर संदेह नहीं किया जा सकता। वे जो कुछ सोचते हैं, उस में भावुकतापूर्ण कल्पनाओं की उड़ान नहीं होती, लेकिन इस कठोर संसार के प्रिय या अप्रिय अनुभवों का निचोड़ अवश्य रहता है। वे इस संसार को उसी रूप में देखते हैं जिस तरह का यह वस्तुतः है। भावुकतापूर्ण कल्पना और बड़े-बड़े ऊँचे आदर्श—जिनका जन्म वर्तमान शिक्षा और यौवन के साथ ही प्रारंभ हो जाता है—आकर उन की आँखों और अनुभवशील मस्तिष्क को धोखा नहीं दे सकते। वे इस संसार की पहाड़ियों, घाटियों और खाइयों से पूर्णतः परिचित होते हैं, जिनका परिचय हमारे पढ़े हुए साहित्य में सर्वथा नहीं मिल सकता। इसीलिए आज यह आवश्यक है कि युवक और युवतियाँ जहाँ आत्म-विकास के लिए साहस, तथा उदार और आदर्शमय काल्पनिक उड़ान से काम लें, वहाँ माता-पिता और अपने वयोवृद्ध गुरुजनों की सम्मति का भी आदर करें। स्वातंत्र्य और बंधन दोनों एक अंश तक ही सत्य या असत्य हैं। अभी उस दिन मैं एक स्त्री-समाज के उत्सव पर गई थी। वहाँ एक विद्यालय की प्रधान अध्यापिका ने इसी विषय पर विचार प्रकट करते हुए एक बड़ी सुन्दर उपमा दी थी। उन्होंने कहा कि खेती की उन्नति के लिए बाड़ का लगाना आवश्यक है, अन्यथा घोड़े-बैल आदि मवेशी उसका सत्यानाश कर डालेंगे; लेकिन बाड़ का अर्थ उस खेती को बिलकुल ढक देना नहीं है। इससे तो वह नष्ट हो जायगी। यह उपमा

देते हुए उन्होंने बहुत सुन्दर शब्दों में बताया था कि इसी तरह नवयुवतियों को बिलकुल नियंत्रण या बंधन में न रखने से वे संसार के दुष्ट मनुष्यों की शिकार हो सकती हैं। उनकी अनियंत्रित उच्छृंखलता उनको ऐसे मार्ग पर ले जायगी जो ऊपर से बहुत ही रमणीय और सुनहला होगा, लेकिन वस्तुतः वह जहरीले और कटीले पौदों से पूर्ण होगा, इसीलिए उन पर एक नियंत्रण की, एक बन्धन की आवश्यकता है, लेकिन यह बन्धन इतना कठोर भी न हो कि संतान की उन्नति के मार्ग में बाधक हो जाय, माता-पिता या गुरुजन संतान के स्वतंत्र विकास और उनके व्यक्तित्व पर हावी न हो जावें। जिस तरह ऊपर से से ढकी हुई खेती कभी नहीं बढ़ सकती, इसी तरह कठोर बंधनों में बँधे हुए व्यक्ति का आत्म-विकास भी रुक जाता है।

शायद मैं अपने विषय से दूर चली गई. मेरा आशय तो यह था कि गुरुजनों ने अत्यन्त मनन व चिन्तन के बाद यौवन में, जिस की दहलीज पर तुम चढ़ रही हो, विवाह को आवश्यक बनाया है। तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है? यह सौभाग्य की बात है कि पिता जी ही नहीं, माता जी भी सुशिक्षित हैं, वे तुम्हारे मनोभावों का तिरस्कार नही करना चाहती, वे कोई भी कदम उठाने से पूर्व तुम्हारा दिल टटोलना चाहती हैं। क्या अब तुम उन्हें विवाह के प्रबंध के लिए स्वीकृति देती हो? मुझे आशा हैं तुम मुझसे संकोच न करोगी, इस संबंध में जो भी तुम्हारे विचार हों, उन्हें स्पष्ट लिखोगी। तुम यह विश्वास

रक्खो कि मै कोई ऐसी बात न होने दूँगी, जो तुम्हें अप्रिय हो या तुम्हारे लिए अहित कर हो।

माता जी के चरणों में मेरा प्रणाम कहना। मुन्नी को प्यार। काश्मीर-यात्रा के लिये हुए अपने दो-चार फोटो यदि हों, तो भेज देना। मै उन्हें देखकर ही तुम्हारे साथ काश्मीर-यात्रा का अनुभव कर लूंगी।

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा मे :—

तुम्हारी हितैषिणी बहिन

१०—८—३० शारदा।

नारीत्व का विकास मातृत्व में

प्रिय इन्दु,

तुम्हारा पत्र मिला, तुम सकुशल हो, माता जी भी स्वस्थ हैं, यह जान कर प्रसन्न हुई, यहाँ भी सब सकुशल हैं।

तुम ने अपने पत्र में काश्मीर-यात्रा के अनुभव लिखे हैं, इधर-उधर की चर्चा भी की है, किन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, मैंने विवाह के संबंध में बहुत-कुछ लिखा था, तुमने उस सन्बन्ध में एक भी अक्षर नहीं लिखा, इससे मैं क्या समझूँ ? क्या अभी तक तुम विवाह के लिए उद्यत नहीं हो ? या केवल संकोच के कारण ही तुम इस विषय पर अपने पत्र में चुप रही हो।

आजकल की पढ़ी-लिखी युवतियों में विवाह के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा पाई जाती है, इसे मैं जानती हूँ। वे यह समझती हैं कि विवाह का अर्थ है उस निर्मम पुरुष के प्रति आत्म-

समर्पण जिसने नारी-जाति पर सदियों से अत्याचार किये हैं। विवाह का अर्थ है एक ऐसे मनुष्य की जीवन भर दासता करना, जो सदा से घमण्डी रहा है और जिसने अपने शारीरिक बल तथा धन के गर्व पर सदा स्त्री को नीचा दिखाया है, जो स्त्री को पैरकी जूती समझता रहा है और उसकी सुविधाओं तथा अधिकारों की सदा अवहेलना करता रहा है। आजकल की शिक्षित युवतियाँ पढ़ती हैं कि प्रत्येक धर्म के नेताओं और प्राचीन स्मृतिकारों ने स्त्री का सदा अपमान किया है। जो मनु स्मृतिकार—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" कह कर नारी का आदर करते हैं, वही मनु उनके बारे में कहते हैं—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेह वासश्च नारी संदूषणानि षट्॥
नैताः रूपे परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं व विरूपं वा पुमानित्येव भुंजते॥ (९ अ-१३-१४)

मद्यपान, दुर्जन की संगति, पति से अलग रहकर इधर उधर घूमना तथा असमय में सोना और परगृह में निवास, ये छः स्त्रियों के दोष हैं। स्त्रियाँ न तो रूप का विचार करती हैं और न आयु का. सुरूप अथवा कुरूप कोई पुरुष होना चाहिए उसी के पास ये चली जायँगी।

सचमुच गोस्वामी तुलसी दास तक "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" कहकर नारी जाति

की निन्दा करते हैं। "स्त्री पुरुषोनाधीयाताम" का नारा भी पुरुष समाज ने लगाया था। ऐसी सब बातें जब आज की कन्या पढ़ती है और जब वह यह देखती है कि आज के समाज में स्त्री की स्थिति अत्यन्त तुच्छ है, वह अकेली कहीं घूम फिर नहीं सकती, चौबीस घण्टे उसे पर्दे में और कहीं कहीं तो भीषण पर्दे में रहना पड़ता है, घर में दासी की तरह काम करना पड़ता है, दिन भर वह चूल्हे का धुआँ सहने, बालकों के स्नान कराने, कपड़े धोने और अन्य कामों से परेशान हो जाती है, तब यह स्वाभाविक ही है कि पुरुष के प्रति उपेक्षा या तिरस्कार के भाव उसके हृदय में जाग्रत हों। जब वह अपने विद्यालयों में या महिला-सम्मेलनों में नारी के समान अधिकार का नारा सुनती है और स्वाधीनता, अधिकार आदि के ऊँचे काल्पनिक आदर्शों का चित्र देखती है, तो स्वभावतः उस में पुरुष के प्रति आत्म-समर्पण की रही-सही भावना भी नष्ट हो जाती है और वह सोचने लगती है कि मेरा जीवन केवल घर-गृहस्थी के झंझटों के लिए नहीं है, मैंने शिक्षा केवल इस लिए प्राप्त नहीं की कि अपनी आँखें चूल्हे के धुएँ से खराब कर लूँ या जीवन भर पति के लिए रोटियाँ सेकती रहूँ अथवा घर-गृहस्थी के झंझटों में पड़ कर अपना जीवन बरबाद करूँ। मैं इस संसार के विशाल क्षेत्र में कुछ कर दिखाऊँगी। विज्ञान, ज्योतिष, राजनीति, व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा आदि बीसियों क्षेत्र हैं, जिन में से किसी एक में भी मैं प्रविष्ट होकर अपना

नाम अमर कर सकती हूँ । क्यों मैं एक पुरुष की दासी होकर रहूँ ? विवाह कोई आवश्यक कर्तव्य नहीं है, यदि पुरुषों ने विवाह को धर्म का स्वरूप दिया है, तो उसका उद्देश्य उनकी अपनी वासना की शांति ही करना है।

मैं एक विद्यालय में कुछ दिन पढ़ाने गई, मैं यह देख कर स्तब्ध रह गई कि आजकल की छात्राओं में भी पुरुष जाति के प्रति तिरस्कार व घृणा के भाव किस बुरी तरह घर कर रहे हैं। जब कभी पुरुष की चर्चा चलती, तो उसकी चारों ओर से निन्दा होने लगती। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' पढ़ें या मुंशी प्रेमचन्द की 'निर्मला' उन्हें पुरुषों का अत्याचार सर्वत्र दिखाई देता था। मैंने उन्हें आखिर एक दिन कहा कि जिन पुरुषों की तुम आलोचना कर रही हो, जानती हो वे कौन हैं ? वे हैं तुम्हारे पिता, चाचा, मामा और तुम्हारे भाई। वे हैं वे लोग, जिन के चरणों की सेवा करते हुए तुम्हें अपना समस्त जीवन व्यतीत करना है। तुम जब पुरुषों की निन्दा करती हो, तब अपने पिता की, जिन्होंने तुम्हें पाल-पोस कर बड़ा किया है, अपने भाई की, जिनका स्नेह पाकर तुम अपने को धन्य समझती हो, निन्दा करती हो। मैंने उन्हें अंत में कहा कि पुरुष के प्रति वितृष्णा और तिरस्कार का भाव तुम्हारे भावी जीवन को नष्ट कर डालेगा, क्योंकि गृहस्थ तो आत्मसमर्पण और आत्मत्याग का दूसरा नाम है।

मैं नहीं जानती कि इस संबंध में तुम्हारे क्या विचार हैं।

मैं यह नहीं कहना चाहती कि नारी पर पुरुष समाज ने अत्याचार नहीं किये। जितना तुम या कोई दूसरी पढ़ी-लिखी स्त्री समझती है, मैं भी उसी तरह यह अनुभव करती हूँ कि नारी पीड़ित है, सदियों से वह सताई हुई है। विदेशों में तो उसकी उतनी इज्जत भी नहीं रही, जितनी भारत में थी। मैं स्वयं नारी हूँ और नारी-हृदय रखती हूँ। जब मैं देखती हूँ, रात भर वेश्याओं के दरवाज़ों पर ठोकरें खाने वाला एक पुरुष नारी को पतिव्रत धर्म का उपदेश देता है, जब मैं सुनती हूँ कि चार चार या पाँच-पाँच स्त्रियों को मार कर फिर नया विवाह करने वाले भी एक बालविधवा को आदर्श वैधव्य और संयम की शिक्षा दे रहे हैं, जब मैं पढ़ती हूँ कि स्वयं संसार भर की यात्रा करने वाले और पर-स्त्रियों के साथ हँस हँसकर बोलने वाले अपनी स्त्री को घर की चाहरदीवारी से बाहर न निकलने के लिए परामर्श देते हैं, तो मेरा नारी-हृदय सचमुच खौलने लगता है और मेरे हृदय में तीव्र ज्वाला जलने लगती है। मैं सोचने लगती हूँ, कि क्या संसार के समस्त वैभव और संपूर्ण सुख केवल पुरुष के लिए ही हैं? क्या सूर्य चाँद और तारों के रमणीक दृश्य, सुखद समीर और प्राकृतिक छटा केवल पुरुषों के लिए है? और क्या समस्त जप तप-नियम और सब शास्त्र केवल स्त्रियों के लिए ही हैं? क्या पुरुषों पर न शास्त्र होते हैं और न समाज के बंधन? कभी कभी मेरे हृदय में भी पुरुष के विरुद्ध विद्रोह, क्रान्ति तथा संघर्ष की आँधी उठती है और इच्छा

होती है कि वेद, शास्त्र, स्मृति और प्राचीन उपदेश सभी को अग्नि-देवता के अर्पण कर दूँ, हम भी पुरुष की भांति सीना निकाल कर संसार में चलें, यदि पुरुष के लिए पत्नीव्रत धर्म नहीं है, तो स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म की क़ैद क्यों रखी जाय ? क्यों न हम भी संसार में स्वच्छन्द विचरें ? क्यों हम घर की चाहरदीवारी में आँखों को ख़राब करने वाले चूल्हे के धुएँ में तथा पति की दासता में अपना जीवन व्यतीत कर दें ? बाल-बच्चों के लिए हमीं क्यों परेशान हों ? क्या इनके पालन-पोषण में पिता की कोई ज़िम्मेवारी नही ? फिर क्यों हमीं चौबीसों घण्टे उनकी फ़िक्र में अपने समस्त सुखों का बलिदान कर दें।

उपर्युक्त विचार केवल मेरे ही हृदय में नहीं आते, मेरी भाँति अधिकांश शिक्षित बहिनों के हृदय में भी उठते हैं, लेकिन दूसरे ही क्षण जब मैं शांत चित्त से इस पर विचार करती हूँ तो मुझे मालूम होता है कि ये सब विचार हमारी अधीरता के द्योतक हैं। पुरुष अपना कर्त्तव्य-पालन नही करता, तो नारी क्यों अपने कर्त्तव्यों का अपने धर्म का त्याग कर दे ? हम पुरुष के जिस आचरण की आलोचना करती हैं, उसी का अनुकरण हम स्वयं क्यों करें ? यदि हमारा साथी कुएँ में गिरता है, तो हम भी कुएँ में क्यों गिरें ? हम जानती हैं कि यूरोप की नारी ने उपर्युक्त विचारों को अपनाया है; लेकिन क्या वहाँ सुख है ? क्या वहाँ की नारी आज संतुष्ट है ? क्या

वहाँ का दाम्पत्य जीवन सुखमय है ? यूरोप की नारी संतुष्ट नहीं है। वहाँ प्रति दिन दिये जाने वाले सैकड़ों तलाक (और यह कम दुःख की बात नहीं है कि ज्यादा तलाक स्त्री की ओर से दिये जाते हैं) इसका स्पष्ट प्रमाण हैं।

बात यह है कि पश्चिम की नारी ने अधिकार की आवाज़ उठाई, उसने पुरुष के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर चलना चाहा, पुरुष जैसा खाता है; जो खेल खेलता है, जहाँ जाता है, जो काम करता है, वे अच्छे हैं या बुरे, उसके लिए उचित हैं या अनुचित, इसका विवेक किये बिना उसने सभी काम अपना लिये। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छे या बुरे सभी क्षेत्रों में उसने उसका अनुकरण किया, उसका मुकाबला किया और अब वह उससे भी आगे निकल जाने की फ़िक्र में है। यदि वह शिक्षा, साहस, राजनीति, विज्ञान और कला में उसका अनुकरण करती, तो उससे संसार का कल्याण होता, पर वह इन सब क्षेत्रों में ही प्रगति करके संतुष्ट नहीं है, वह शराब पीने, सिगरेट का धुआँ उड़ाने और असंयम में भी पुरुष का मुकाबला करने लगी है। इसका कारण यह है कि वह पुरुष के समान अधिकार चाहती है। वह कहती है कि जो कुछ पुरुष करता है, वही करने का हमें भी अधिकार हो। समानाधिकार की यह आवाज़ इतना ज़ोर पकड़ चुकी है कि आज नारी यही भूल गई है कि विश्व में. मंगलमय भगवान् की सृष्टि में उसका क्या स्थान है, उसके जन्म का क्या उद्देश्य

है। स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक रचना-भेद—शरीर व मन के भेद के द्वारा यह स्पष्ट है कि दोनों का कार्य एक नहीं है, नारी का असफल जीवन उसके नारीत्व में है और पुरुष की सफलता उसके पुरुषत्व में है, इसलिए नारी को सच्ची नारी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस तरह एक पुरुष नारियों का अनुसरण करता हुआ स्त्रैण या जनाना आदि नामों से पुकारा जाता है उसी तरह एक पुरुष की नकल करना और नारी-धर्म को छोड़ना भी नारी के लिए लज्जाजनक है। हम जब पुरुष का अनुकरण करना चाहती हैं, तब प्रकारान्तर से हम भी यह स्वीकार करती हैं कि नारीत्व क्षुद्रता है, हीनता है, अपने प्रति यह क्षुद्रता की—इनफ़ीरियोरिटी की—यह भावना ही आज की नारी को सताये जा रही है, इससे हमें बचने की ज़रूरत है।

संभव है, इस गंभीर विवेचना में तुम्हारा चित्त न लगे। यह सब कहने से मेरा आशय यह है कि नारी का जीवन नारीत्व के विकास में है और नारीत्व का विकास मातृत्व में है। सृष्टि में यही उसकी सबसे बड़ी देन है। हम ताजमहल जाते हैं, उसके निर्माता की प्रशंसा करते हैं। एक चित्र या उत्कृष्ट कविता देखते हैं, तो कलाकार की प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, परन्तु इस समस्त विश्व में सब से अधिक मूल्यवान् और श्रेष्ठतम कृति मानव-प्राणी है और उसके निर्माण का सौभाग्य माता को प्राप्त होता है। एक कलाकार कला की साधना करते हुए जीवन व्यतीत कर देता है, तब कहीं वह

संसार को कुछ दे पाता है, इसी तरह माता को भी संसार की सर्वश्रेष्ठ कृति बनाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि पुरुष क्या करता है, उसके सामने तो अपने आदर्श हैं, अपना महान् उद्देश्य है। इसीलिए समानाधिकार की रट लगाते हुए पुरुष से वितृष्णा और घृणा अनुचित है और इसीलिए विवाह के नाम से चौंकना भी अनुचित है। सच कहो तो नारी-जीवन की सार्थकता ही विवाह और मातृत्व में है, इसी के द्वारा वह अपनी समस्त शक्तियों का सुन्दरतम उपयोग कर सकती है और यहीं आकर वह अपूर्ण से पूर्ण की ओर जाती है।

और इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए पुरुष का सहयोग अनिवार्य है। संसार में स्त्री पुरुष दोनों का अपना अपना स्थान है। दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, पूरक हैं। स्त्री में स्नेह की और पुरुष में तेज की प्रधानता पाई जाती है। शरीर के भागों को दृष्टि से हटा लें, तो दोनों में एक ही मूल वस्तु—आत्मा दिखाई देगी, किन्तु स्थूल जगत् में दोनों के गुण और बल में अन्तर पड़ गया है। इसी से उनके कर्तव्य भी अपने आप भिन्न होगए हैं। पत्नी और फिर माता होने के कारण स्त्री के जीवन में स्नेह, वात्सल्य और कौटुम्बिकता की अधिकता है और उसके जीवन में घर को प्रधान स्थान है। पति व पोषक होने के कारण पुरुष के जीवन में तेज, पुरुषार्थ की प्रधानता है और उसके जीवन में व्यवसाय को प्रधान स्थान मिला है। दोनों एक

दूसरे की कमी पूरी करते हैं और इसीलिए सहयोग आवश्यक है। नारी को शक्ति की जननी आद्या शक्ति कहा गया है। "पुरुष अपने सारे सत्व को खींचकर स्त्री को प्रदान करता है, किन्तु स्त्री उसे ग्रहण करके अपने सत्व में मिलाती, अपने में उसे धारण करती और फिर उसकी एक अनुपम कृति जगत् को प्रदान करती है। इसीलिए पुरुष तो अपनी धरोहर स्त्री को देकर अलग हो जाता है, किन्तु स्त्री बड़ी वफ़ादारी से उसे संचित करके जगत् को देकर ही अलग नहीं हो जाती, बल्कि उसे जगत् की सेवा के योग्य बनाती है।"* इसीलिए मातृ-शक्ति की महिमा है। क्षमा, दया, तितिक्षा, उदारता, शान्ति आदि मृदुल गुण नारी के गुण हैं और इन गुणों का विकास मातृत्व में—गृहस्थ जीवन में पुरुष के सहयोग से होता है।

एक दूसरे लेखक के शब्दों में कहूँ तो "विवाह में आत्म-रक्षा, आत्म-प्रसारण, आत्मपरिस्करण और आत्म-निवेदन की मानवी एवं प्राकृतिक प्रवृत्तियों को पूर्ण प्रकाश मिलता है।" कौमार्य अवस्था में युवक या युवती की दृष्टि केवल 'स्वअर्थ' तक सीमित रहती है, विवाह के बाद वह सृष्टि का एक अंग हो जाता है और दूसरों के लिए अपने बल, बुद्धि और धन का पवित्र त्याग करता है। विवाह केवल राग-रंग या मनो-विनोद की वस्तु नहीं है, यद्यपि इसमें स्त्री या पुरुष की स्वाभाविक उद्दाम मनोभावनाओं की संयत रूप में पूर्ति भी अवश्यक हो

* स्वतंत्रता की ओर, ले० श्री हरि भाऊ उपाध्याय।

जाती है। यह कर्तव्य और कल्याण का एक लम्बा संयुक्त जीवन है, जिसमें 'पर अर्थ' त्याग करना पड़ता है।

प्राचीन शास्त्रों में विवाह को एक अध्यात्मिक बंधन के रूप में स्वीकार किया गया है। उसे केवल स्त्री-पुरुष का पारस्परिक वासना पूर्ण आकर्षण ही नहीं बताया गया, यद्यपि इसका महत्त्व भी कम नही है। पुरुष पत्नी के बिना आधा है। राम को यज्ञ करने के लिए सती सीता की प्रतिमूर्ति रखनी पड़ी। महा भारत में—

"अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥"

कहकर पत्नी को अनिवार्य बताया है।

दायभाग में लिखा है—

शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्या पुण्य फले समा

ये सब बातें कहने का अर्थ यह कि नारी-जीवन की पूर्णता गृहस्थ और मातृत्व के जीवन में है। व्यक्ति की अपनी आवश्यकता के दृष्टिकोण से देखिये, समाज व सृष्टि की परम्परा को कायम रखने के विचार से अथवा धार्मिक व्यवहार से विवाह अत्यन्त आवश्यक माना गया है, इसलिए तुम निस्संकोच होकर माता जी से अपनी सहमति जता देना।

तुम्हें शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक डाक्टर ने जब यह हिसाब लगाया कि विवाहित और अविवाहितों में

अधिक मृत्यु-सँख्या किस श्रेणी की होती है, तो वह यह जान कर विस्मय-सागर में डूब गया कि विवाहितों की औसत जीवन-आयु अधिक है।

जो स्त्रियाँ विवाहित जीवन को बुरा और पुरुष जाति का अत्याचार समझने लगी हैं, वे क्यों नहीं गंभीरता से इस बात पर विचार करतीं कि यदि विवाह और गृहस्थ-जीवन केवल कृत्रिम और अनावश्यक होता, तो क्यों मंगलमय भगवान् जिनकी सृष्टि में एक भी पत्ता व्यर्थ नहीं है, स्त्री-पुरुष के शरीर की रचना में इस तरह का भेद उत्पन्न करते ? क्यों बच्चे को रोता देख कर माता की छाती में दूध की धार बहने लगती है?

मैंने इस पत्र में विवाह के शारीरिक वासना-संबंधी उद्देश्य की जानबूझ कर ही चर्चा नहीं की। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इसको मैं महत्त्व नहीं देती। तरुण हो या तरुणी, तरुणाई के उदय के साथ साथ उसके शरीर में अनेक महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन होने लगते हैं। नवयुवतियों की आँखों में ज्योति बढ़ने लगती है, मुख पर लावण्य छा जाता है। छाती में अकड़ और मदभरी चाल, और अंग में सुघराई और चुलबुलापन, नई स्फूर्ति, सौन्दर्य यह सब तारुण्य के लक्षण हैं। शारीरिक परिवर्तन के साथ साथ मानसिक परिवर्तन भी शुरू हो जाते हैं। एक गुदगुदी और एक प्रकार की चंचलता या उत्तेजना जीवन में एक आनन्द, ये सब तारुण्य के ही सूचक हैं। युवक और युवती का एक दूसरे के प्रति आकर्षण और आँखों में

नशा—यह सब स्वाभाविक है और यही सब परिवर्तन एक युवक या युवती के जीवन में उच्छृंखलता और असंयम का प्रवाह पैदा कर देते हैं। विवाह असंयम के इस प्रवाह को सीमाओं में संयत कर देता है। शरीर की यह प्राकृतिक आवश्यकता है और इसकी नियमित पूर्ति होनी आवश्यक है।

वस्तुतः यह उद्दाम वासना तब तक दुनिया से दूर नहीं हो सकती, जब तक पुरुष पुरुष हैं और स्त्रियाँ स्त्रियाँ हैं। इसीलिए केवल माता पिता, भाई बहन या मित्र से हितैषी होते हुए भी एक ऐसे साथी की आवश्यकता रह जाती है, जो सच्चा हितैषी भी हो, साथ ही वासनात्मक इच्छा को भी तृप्त कर सके। विवाह इसी प्रकार का साथी हमें देता है।

म० गांधी और ऋषि टालस्टाय आदि ने विवाह का विरोध किया है। वे विवाह को आवश्यक और अनिवार्य धर्म के रूप में स्वीकार नहीं करते। मैं यह समझती हूँ कि गृहस्थ धर्म परमात्मा का आदेश है, जो इस का पालन नहीं करता है, सीधे ही ब्रह्मचर्य से संन्यास-आश्रम को ग्रहण कर लेता है। वह परमात्मा के आदेश को तोड़ता है। जो आत्मा जितनी महान् है, उसका उतना ही अधिक कर्तव्य है कि वह अपने समान एक प्रतिकृति संसार को देकर अपने पितृ-ऋण को चुकावे। यदि परमात्मा को यह अभीष्ट न होता, तो वह शरीरों की रचना में भेद भी न करता।

यह पत्र कुछ लम्बा हो गया। अब तुम्हारा भांजा मचल

रहा है। बारबार कलम पकड़ रहा है। इसलिए बस करती हूँ। पर इस आशा के साथ कि तुम माता जी को विवाह के संबंध में सहमति सूचित करके निश्चिन्त कर दोगी। उनसे संकोच न करना।

माता जी और पिता जी को प्रणाम कहना।

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में—,

तुम्हारी हितैषिणी

२१—८—२० शारदा

क्या यही गृहस्थ जीवन है ?

मान्य बहिन जी,

आप मुझे विवाह के लिए विवश तो कर रही हैं, और मैं आपकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकती, इसीलिए मैंने माँ को सहमति दे दी; किन्तु कभी कभी हृदय में एक संकोच सा होता है, एक तूफान सा चलने लगता है। अभी तक तो माता के वात्सल्य और पिता के स्नेह के वातावरण में आनन्द मना रही हूँ, खेलती-कूदती और खाती-पीती हूँ। जो चाहती हूँ करती हूँ, कोई रोकने वाला नहीं, मचल पड़ती हूँ तो माँ बुरा नहीं मनाती। लाड़-प्यार और दुलार की दुनियाँ में पल रही हूँ। भाई और भाभी भी मुझे बिना बुलाये खाते नहीं, ऐसे घर को छोड़ना पड़ेगा, यह सोचते ही दिल काँप जाता है और जब सोचती हूँ कि न जाने सास कैसी होगी, ससुर कैसे होंगे और सबसे बढ़कर न जाने जीवन-संगी किस प्रकृति के

होंगे, तब दिल में कँपकपी छूटने लगती है। पड़ोस का ही हाल देखती हूँ, तो गृहस्थ-जीवन से घृणा होने लगती है। एक पड़ोसिन है, उसे प्रायः दूसरे तीसरे दिन पति देवता पीटते हैं। इसका कोई उचित कारण भी प्रतीत नहीं होता। पड़ोसिन बड़ी भली और भोली है, गाँव की लड़की है, शहर की वेशभूषा और शृङ्गार से परिचित नहीं, वह अपनी ओर से कोशिश भी करती है, पर पति देवता अत्यन्त फैशनपरस्त हैं, उनकी रुचि अत्यन्त परिष्कृत है, वे संतुष्ट नहीं हो पाते, बस इसी से उसे मार खानी पड़ती है। सोचती हूँ कि क्या यही गृहस्थ-जीवन है?

एक रमा है, जो मेरे साथ ही पढ़ती थी। दो साल हुए, विवाह हुआ था। बड़ी सुशिक्षित लड़की है। उसके पति भी पढ़े लिखे, सभ्य और सुशील हैं। देखने सुनने में भी अच्छे हैं। रमा से वे प्रेम भी खूब करते हैं। दोनों प्रातः सायं घूमने जाते हैं—हँसते-खेलते हैं, लेकिन जहाँ पति दफ्तर गये, बेचारी रमा की आफत आ जाती है। जितनी वह भोली भाली है, उतनी ही सास कर्कश और कठोर। सास की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं, बर्तन माजने और झाड़ देने का काम उससे कराया जाता है, घर भर के मैले कपड़े उसे धोने पड़ते हैं, चूल्हा चक्की भी उसे करना पड़ता है, फिर भी सास प्रसन्न नहीं है, कभी उसे शाबासी नहीं देते सुना। इस का मैं तो एक ही कारण समझती हूँ—मैं क्या समझती हूँ, माताजी का खयाल है कि विवाह से पहले रमा के पति माँ की सदा

आज्ञा मानते थे, हर एक काम माँ से पूछ कर करते थे, माँ से घण्टों बातें करते थे; पर अब उनकी पत्नी आ गई है, वह आते ही उसके कमरे में जाते हैं, सवेरे शाम उसके साथ घूमने जाते हैं। सास समझती है कि बहू ने आते ही मेरे बेटे को मुझ से छीन लिया। बस, इसीलिए उस पर सारा क्रोध है—इसीलिए दिन भर उसे गालियाँ सुनने में बीतता है। रमा के पति भी तो अपनी माँ को नही रोकते। इससे तो अच्छी वह तभी थी, जब कुमारी थी। मैं रमा का जीवन देखकर सोचती हूँ, क्या यही गृहस्थ-जीवन है ?

एक और पड़ौसिन है कान्ता, आप ने भी तो उसे देखा था, कितनी सुन्दर थी, कितना कमनीय चेहरा था, पर आज वह पहचानी नहीं जाती, चेहरा मुरझा गया है, कभी मुस्कराहट का नाम नहीं, हाथों में न चूड़ियाँ हैं, न बढ़िया कपड़े, हमेशा सास की जूतियाँ, कारण यह कि वह विधवा हो गई है। उसके पति वृद्ध थे—कबर में पैर लटकाए। उन्होंने इस अबोध कन्या से विवाह कर लिया। कब तक गाड़ी चलती, मर गये—बस। कान्ता—पहले की दुखिनी कान्ता—पर पहाड़ टूट पड़ा। ७५ वर्षीया सास यह नहीं देखती कि उसका पुत्र ही बहुत बूढ़ा था, फिर खाँसी और दमे का मारा हुआ। मर गया तो बेचारी बहू का क्या कसूर ? पर सारी नाराजगी उसी पर है। सोचती हूँ, क्या यही गृहस्थ-जीवन है ?"

"एक चौथी पड़ौसिन है, कामकाज में होशियार, कभी

काम करते थक नहीं करती। सारे घर का काम उसी के सिर पर, लेकिन आज वह दुखी है, उसके छः बाल-बच्चे हैं और सातवें की बारी है। वह इनके मारे परेशान है, दिन में एक मिनट भी उसे आराम नहीं मिलता, बच्चों का रोना-धोना, कपड़े, रोटी, दूध, बस इसी में उसका सारा जीवन बीत जाता है, न कहीं किसी से बातचीत कर सकती है, न कहीं बाहर जा सकती है। सोचती हूँ, क्या यही गृहस्थ-जीवन है ?

एक और पड़ोसिन को भी जानती हूँ। नाम उसका है हेमलता। भाग्यदोष से उसके पति विवाह के चार साल बाद चल बसे। एक छोटी सी बालिका गोद में थी। किन्हीं एक प्रतिष्ठित सज्जन का उसके यहाँ आना जाना था। परस्पर प्रेम बढ़ गया। पिता नयी रोशनी के थे। पिता ने देखा, तो उसी युवक के साथ हेम का पुनर्विवाह कर दिया। यह युवक भी एक बड़े प्रेस के मैनेजर थे। विवाह खुशी खुशी हो गया। वह पति के घर गई, पर चार दिन बाद लौट आई और तब से पिता के घर है। मालूम हुआ कि वे युवक दुराचारी थे, किन्हीं दो बहनों के साथ उनका अनुचित सम्बन्ध था। हेमलता घर गई, तो उसे बरामदे मे सोना पड़ता और वे बहनें उनके साथ कमरे में सोतीं। इतना अनर्थ कैसे सहती, बेचारी रोई-धोई। लेकिन समाज में प्रतिष्ठित उस युवक का हृदय न पसीजा। कह दिया—मैं तो इन्हीं की नौकरी के लिए तुम्हें ब्याह लाया था। आज पिता भी उसका आदर नहीं करते। पहले की बालिका

ससुराल वालों ने ले ली। उनकी चीज़ जो थी। बेचारी हेम रोती है और कलप-कलपकर अपने अन्तिम दिन गिन रही है। सोचती हूँ कि क्या यही गृहस्थ-जीवन है ?

ऐसे ही बीसियों उदाहरण सुनने को मिलते हैं, जब पास-पड़ोस की महिलाओं के हाल सुनती हूँ। इसीलिए बारबार दिल में धुकधुकी लगती है कि न जाने गृहस्थ जीवन कैसा बीतेगा ? न जाने जीवन-संगी का स्वभाव क्या होगा ? न जाने वे मुझसे संतुष्ट होंगे या नहीं ? उस दिन मैंने माँ से हामी तो भर दी, लेकिन दो एक दिन इन्हीं संकल्प-विकल्पों में रही। मैं यह नहीं कहती कि सुखी गृहस्थ हैं ही नहीं, मेरी कई सहेलियाँ बहुत सुखी हैं, उनके चेहरे का लावण्य बढ़ गया है, जब देखती हूँ, हँसती रहती हैं, किसी किसी का बच्चा इतना भोला और अच्छा दीखता है कि इच्छा होती है कि उठा लूँ और सदा खिलाती रहूँ। लेकिन यह कौन जाने, मेरा जीवन कैसा बीतेगा ? इसीलिए संकोच करती हूँ।"

अशोक और सुभाष को प्यार, बहनोई जी को नमस्ते।

आपकी स्नेहाकांक्षिणी

इन्दु

जीवन-संगी का चुनाव—(१)

प्रिय इन्दु,

तुम्हारा लम्बा सा पत्र मिला। अत्यन्त उत्सुकता से एक साँस में पढ़ गयी। यह जानकर प्रसन्न हुई कि तुम ने माता जी को विवाह के बारे में सहमति देकर उन्हें निश्चिन्त कर दिया है। मुझे अपनी इन्दुरानी से यही आशा थी। शाबास, मेरी प्यारी रानी, मेरा कहना न मानती, यह संभव भी न था।

इधर माताजी का पत्र भी मिला है, जिस में आगे के बारे में विचार करने के लिए मुझे बुलाया है, किन्तु अभी मैं न आ सकूँगी। मेरी ननद का विवाह है—१५—२० दिनों तक होगा। महीना डेढ़ महीना व्यस्त रहूँगी। यदि मैं आती तो मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर वहीं आकर देती। अब भी कुछ इसी प्रकार के कामों में व्यस्त रही। जल्दी उत्तर न दे सकी।

जो संकल्प-विकल्प तुम्हारे हृदय में उठ रहे हैं, वे अत्यन्त

स्वाभाविक हैं। सच कहूँ, तो अपने विवाह से पहले क्षण तक मेरे भी हृदय में ऐसे ही संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, लेकिन तुम तो जानती हो, तुम्हारे जीजा से मुझे कोई शिकायत नही है। मैं यह नहीं कहना चाहती कि हम दोनों पूर्ण हैं। संभव है, हम में कुछ कमजोरियाँ हों, पर इधर दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया है और हम एक दूसरे की कमियों की ओर ध्यान देकर एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। तुम ने अपने पत्र में जिन दुःखी बहनों के उदाहरण दिये हैं, सचमुच उन्हें पढ़ कर मेरा दिल भी रो उठा। लेकिन मैं समझती हूँ कि यदि वे और उनके माता-पिता दूरदर्शिता से काम लेते तो ये परिवार भी अपने को आज से बहुत अच्छी अवस्था में पाते। फिर न पुरुष देवता हैं, न लड़की ही देवी है, दोनों में थोड़ी बहुत कमियाँ व कमजोरियाँ संभव हैं, इसलिए अपने कौशलपूर्ण व्यवहार से एक दूसरे के सुख दुःख का, रुचि अरुचि का ध्यान रखते हुए गाड़ी चलानी चाहिए, पर फिर भी सब से पहले जीवन-संगी का चुनाव करते समय सब सावधानियाँ कर लेनी चाहिए। तुम ने जो उदाहरण दिये हैं, उन में कान्ता और हेमलता के विवाह के पहले यदि माता-पिता यह निश्चय कर लेते कि आदमी वृद्ध या दुराचारी तो नहीं है, तो शायद उनका जीवन इतना बुरा न बीतता।

जीवन-संगी या साथी का चुनाव सचमुच बहुत कठिन

है । माता पिता इसके लिए कितने परेशान होते हैं, यह हम नहीं जान सकतीं । न उन्हें दिन में चैन मिलता है, न रात में आराम । परेशानी और दुःख में वे महीनों बिता देते हैं । जहाँ किसी योग्य युवक का नाम सुनते हैं, वहाँ पहुँचते हैं । हर एक मिलने जुलने वाले से पूछते हैं कि कोई योग्य युवक बताओ । फिर हमारा यह कुरीतियों से भरा-पूरा हिन्दू समाज ! जात-पाँत का भूत !! दहेज का राक्षस !!! अपनी जात से बाहर कितना ही योग्य लड़का क्यों न हो, उससे विवाह नहीं करना । छोटा सा दायरा और फिर आपसी रिश्तों के कारण वह और भी संकुचित होता जाता है । योग्य लड़के कहाँ मिलते हैं ? जो कोई भी योग्य अयोग्य जवान या बूढ़ा आदमी मिलता है, उसी के गले अबोध कन्या बाँध दी जाती है । मैं एक कन्या को जानती हूँ । बहुत पढ़ी-लिखी है । इसके पिता बहुत ही सुसंस्कृत, वकील हैं, आर्यसमाज के नेता हैं, कन्या को खूब पढ़ाया, लाड़-प्यार से पाला, लेकिन जात-पाँत के भूत को दूर न कर सके । अपनी बिरादरी में लड़का ढूँढ़ने लगे, कोई न मिला, आखिर २०) रुपया कमाने वाले एक मिडिल पास छोकरे से उस विदुषी कन्या का विवाह कर दिया । दिन भर रोती है, कहती है अच्छा होता, पिता मुझे न पढ़ाते या जन्म होते ही मेरा गला घोंट देते ।

यदि बहुत प्रयत्न करने पर भाग्य से कोई अच्छा लड़का मिल भी जाय, तो वह अपना मुँह इतना अधिक खोलता है

कि मध्य श्रेणी के लोग इतना दहेज अपना घर-बार-सर्वस्व बेचकर भी नहीं दे सकते। आज कल अखबारों में निकलने वाले विज्ञापन दहेज के इस लोभ-राक्षस का अच्छा परिचय देते हैं। विज्ञापनों में निर्लज्ज होकर मोटर की या अच्छे दहेज की माँग की जाती है, किसी किसी विज्ञापन मे तो विलायत मे पढ़ाने के सभी खर्च माँगे जाते हैं। ऐसी स्थिति है, जिसमे माता-पिता को बच्ची के लिए वर तलाश करना पड़ता है। न जाने दहेज की बलि पर कितनी स्नेहलताएँ बलि हो गईं, फिर भी हमारा पापी समाज अभी तक उसे अनुभव नहीं करता।

जीवन-संगी का चुनाव अत्यन्त कठिन है। प्राचीन काल की परिपाटी के अनुसार गुरुकुलों के आचार्य कन्या और युवक का शरीर स्वभाव वर्ण आदि की समानता देखकर माता-पिता को विवाह का परामर्श देते थे। स्वयंवर की प्रथा भी विद्यमान थी, जहाँ राजकुमारियाँ योग्यतम वर का चुनाव अपने अपने दृष्टिकोण से किया करती थी। सीता में धनुष उठा लेने की शक्ति देखकर ही उसके माता-पिता को वीर वर की आवश्यकता महसूस हुई थी। प्राचीन काम-शास्त्रों में भी कन्या और वर का चुनाव करते हुए शारीरिक गठन व स्वभाव की समानता देखने पर विशेष जोर दिया गया है, और समस्त स्त्री-पुरुषों को शारीरिक रचना के अनुसार शंखिनी, पद्मिनी, हस्तिनी तथा चित्रिणी और शश, अश्व, मृग आदि में विभक्त किया

गया है। ये भेद कहाँ तक वैज्ञानिक हैं, यह मैं नहीं कह सकती, पर इतना अवश्य कहना चाहती हूँ कि इन भेदों के मूल में परस्पर समानता देखकर विवाह करने का जो सिद्धान्त है, वह वस्तुतः बहुत अच्छा है।

साधारणतः सभी का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों पर आज के हिन्दू-समाज में ध्यान दिया जाता है :—

(१) जात-पाँत—सगोत्र को छोड़कर अपनी जाति।

(२) माता-पिता की आर्थिक स्थिति, ज़मीन-जायदाद।

(३) वर-वधू की शिक्षा और नौकरी।

(४) वर-वधू की आयु, स्वास्थ्य। वंश में कोई पैत्रिक बीमारी तो नहीं है।

(५) वर का और विशेष कर वधू का सौंदर्य।

(६) वर का स्थान, बहुत दूर तो नहीं है।

(७) कन्या की दृष्टि से दहेज की मात्रा।

(८) जन्म-पत्री का मेल।

(९) वर का स्वभाव व सदाचार।

इन सब बातों में जात-पाँत, और दहेज का दृष्टिकोण व्यर्थ है। जन्म-पत्री का मेल भी आज कहाँ तक उचित है, यह मैं नहीं समझ सकी। फलित ज्योतिष पर मुझे तो विश्वास नहीं है और फिर आज कल के अधिकांश ज्योतिषियों का अपूर्ण ज्ञान तथा घरों में रहने वाली घड़ियों का ठीक ठीक न होना, इन सब बातों को देख कर मैं तो यह समझती हूँ कि जन्मपत्री

मिलाने वाले सदा भ्रम में रहते हैं।

माता-पिता की आर्थिक स्थिति देखना साधारणतः अच्छा है। मित्रता के समान विवाह-संबंध भी समान स्थिति वालों में होता है। कहा है :—

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥

जब कभी असमान स्थिति के लोगों में विवाह-संबंध होता है, तो सदा असुखकर होता है। एक सम्पन्न घराने की लड़की दरिद्र घर में कभी सुख अनुभव नहीं करेगी और एक दरिद्र-कन्या सम्पन्न घर में सदा ताने और अपने माता-पिता की ग़रीबी के उलाहने सुनेगी। उसे घर से दहेज या समय-समय पर भेंट आदि कम मिलने पर गालियाँ सुननी पड़ेंगी। फिर भी आर्थिक स्थिति सब से प्रधान शर्त नहीं कही जा सकती।

वर-वधू की शिक्षा भी देखनी चाहिए। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं कि वर तो शिक्षित है, वधू बिलकुल अशिक्षित और इस कारण दोनों के संस्कार, रुचि और विचारों में ज़मीन आसमान का अन्तर होता है और प्रति दिन सुखधाम-गृह में कुरुक्षेत्र के महाभारत-काण्ड की पुनरावृत्ति होती रहती है। पति घर में आता है, रूस के साम्यवाद की चर्चा करता है, राष्ट्रसंघ की असफलता बताता है, गांधी जी के असहयोग का जिक्र करता है, लेकिन स्त्री चुपचाप मुँह बाये खड़ी रहती है,

उस समय पति-देवता खीज जाते हैं। आज कल पचास-साठ फ़ीसदी गृहस्थों के संघर्ष का एक मुख्य कारण है पतियों के मुकाबले में स्त्री का अत्यन्त अशिक्षित होना। इसके विपरीत जहाँ उस वकील की लड़की की भाँति स्त्री शिक्षित और वर अनपढ़ हो वहाँ तो साक्षात् नरक के दृश्य प्रति दिन दीखते हैं। फिर भी पति का शिक्षित होना तो आवश्यक है। वह उच्च शिक्षा-प्राप्त हो, उसमें इतनी सामर्थ्य अवश्य हो कि वह माता-पिता का भरोसा छोड़ कर अपने पैरों पर खड़ा हो सके तथा घर-गृहस्थी का ख़र्च चला सके। यह चुनाव की आवश्यक शर्त है। धन के अभाव में सदा कलह रहता है। घर-जायदाद न भी हो तो रुपया कमाने की सामर्थ्य पति-देवता में अवश्य होनी चाहिए, मैं तो यहाँ तक कहना चाहती हूँ कि नारी में भी इतना सामर्थ्य और साहस अवश्य होना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर वह भी अपनी रोटी खुद कमा सके।

पर इन सब से अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है वर-वधू का स्वास्थ्य और आयु। यदि वर वृद्ध है, तो युवती के साथ उस का विवाह करना घोर पाप है। अनमेल विवाह कभी सुखी नहीं होता। तुम ने तो मुंशी प्रेमचन्द का 'निर्मला' उपन्यास पढ़ा होगा। निर्मला भोली-भाली सुशील लड़की थी, किन्तु उसके पिता-समान बूढ़े पति तोताराम ने उसके समस्त जीवन को बिलकुल बदल दिया। स्वास्थ्य अच्छा न हो, तब भी घर में सर्वदा अशान्ति रहती है। एक सहेली को मैं जानती हूँ।

बड़ी सुन्दर भोली-भाली, चलती थी तो कवियों की गजगामिनी की उपमा स्पष्ट हो जाती थी, चेहरा गोरा-चिट्टा, बोलती थी तो मिश्री घोलती थी। पर उसका भाग्य कि पति देवता सदा बीमार रहने वाले, यों बहुत अच्छे थे, कभी क्रुद्ध होते उन्हें नहीं सुना। बड़े विद्वान्। लेकिन उनका स्वास्थ्य सदा खराब, हमेशा दवाइयाँ और परहेज, घर में कभी बढ़िया खाना नहीं, सदा रोगियों का सा सादा भोजन। इसका नतीजा यह हुआ कि उनकी पत्नी का जीवन-रस भी नष्ट हो गया। छः साल में तो उसकी शकल ही बदल गई, मिजाज भी चिड़चिड़ा हो गया। अब बात बात पर खीज पड़ती है, पति को बुरा-भला कहने लगती है, क्या करे बेचारी ने कभी सुख नहीं देखा। उसे मालूम ही नहीं, पति के साथ बैठकर आनन्दमय स्वादु भोजन करने का आनन्द किसे कहते हैं। पति उसे खाने से नहीं रोकते, पर पति न खावे, तो घर में किसे खाना अच्छा लगता है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास है। मैं कुल, शिक्षा, जायदाद आदि सब से अधिक स्वास्थ्य को महत्व देती हूँ। तुम्हें शायद मालूम न हो कि एक सज्जन के पिता मेरे लिए बात करना चाहते थे, पर मेरे पिता जी ने उनके स्वास्थ्य को देख कर इस प्रस्ताव पर विचार नही किया। अब मैं उस सहेली की दशा देख कर सोचती हूँ कि मेरे पिता जी कितने दूरदर्शी हैं। पति का स्वास्थ्य ही नहीं, यह जरूर देखना चाहिए कि वंश में कोई

पैत्रिक रोग तो नहीं चला आ रहा।

वर-वधू का और विशेष कर वधू का सौंदर्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण में सौंदर्य का अपना स्थान है। मनुष्य स्वभावतः सौंदर्य की ओर झुकता है। स्वयं कोई कितना ही कुरूप क्यों न हो, वह यह अवश्य चाहता है कि उसका जीवन-संगी सुन्दर हो। मनुष्य क्यों सुन्दर फूल देखना पसन्द करता है, क्यों वह नदी-पर्वत या प्रातःकाल के सुन्दर दृश्य देखना चाहता है; क्यों वह ताजमहल या अन्य भव्य भवन देखकर प्रफुल्लित होता है? मन स्वभावतः सौंदर्य की ओर झुकता है, तब यह भी स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन-सहचर को भी जिस के साथ उसे उम्र भर रहना है, सुन्दर देखना पसन्द करे। अनेक ऐसे आदमी हैं जिन की पत्नियाँ कुरूप हैं, इसी लिए उन का दिल बाहर के सौन्दर्य की ओर दौड़ता है। तुम्हारे जीजा जी सुनाते हैं कि उनके एक आगरा-निवासी मित्र बहुत सज्जन हैं, आवश्यकता से अधिक भोले। एक दिन विवाह की चर्चा चल रही थी। किसी दिन प्रसंग में कह बैठे "शत्रुः रूपवती भार्या।" उनके अभिभावक उनसे भी भोले थे। समझ बैठे कि यह रूपवती स्त्री नहीं चाहता। उन्होंने सगाई करते हुए यह ध्यान नहीं रखा कि रूप-सौंदर्य भी आवश्यक गुण है। विवाह हो गया। सुशिक्षित मित्र अपनी स्त्री को परदे में रखने के लिए विवश हैं। कई बार कह चुके हैं कि

मैं गृहस्थ-जीवन से संतुष्ट नहीं हूँ। यही हाल स्त्री का है। वह भी रूपवान् पुरुष पसन्द करती है, यद्यपि वह संकोचवश इस भाव को उतनी स्पष्टता से प्रकट नहीं कर सकती।* लेकिन मैं फिर यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि रूप-सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सदाचार, सुशीलता की अपेक्षा बहुत कम महत्त्व रखता है। एक होमियोपैथ डाक्टर ने बड़े दुःख के साथ मुझे अपनी बहिन की मूर्खता का वर्णन सुनाया। उन्होंने कहा कि उनकी बहिन पढ़ी-लिखी है, सगाई की बात चली, उसे दो व्यक्तियों के चित्र दिखाये गये। एक धोती बाँधे हुए सज्जन थे, सुधरे हुए संस्कारों के नेता, दृढ़ और राष्ट्रीय विचारों के सदाचारी और जीवन-निष्ठ। दूसरे थे पूर्वी पंजाब के एक वकील, सूटबूटधारी। उस समय लड़की सूटबूट पर रीझ गई, न चरित्र ही देखा, न स्वास्थ्य। आज वह रोती है, "मेरे पति रात को देर से घर पर आते हैं और वह भी नशे में।" सब से बढ़ कर जीवन-सहचर का सदाचार-स्वभाव महत्त्वपूर्ण है। क्रोधी, लोभी, मोह ममता में फँसा हुआ दुर्बल चित्त सहचर प्रति दिन नई सम-

* इस संबंध में संस्कृत में एक उक्ति है—

कन्या वरयते रूपं, माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बांधवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरेजनाः॥

अर्थात् कन्या रूप को चाहती है, माता धन को, पिता योग्यता को, बंधु बिरादरी के लोग कुल को तथा दूसरे बराती मिठाई के चाहते हैं।

स्याएँ पैदा करता है। इसके कारण जीवन सदा कष्ट में बीतता है। सुशील, नम्र, मिष्टभाषी, दयालु, परोपकारी, व्यवहार-कुशल सहचर के साथ जीवन आनन्द में बीतता है। दुराचारी जीवन-संगी हो तो गृहस्थ-जीवन नरक है। तुम्हीं ने अपने पत्र में हेमलता की चर्चा की थी। उसका जीवन इसीलिए कष्ट में बीता कि उसका पति सदाचारी न था। आज के वातावरण में, जब कि दुराचार बहुत बुरी तरह समाज में जड़ जमा रहा है, इस ओर विशेश ध्यान देना चाहिए। यदि किसी की संगति अच्छी नहीं है, तो निश्चित समझो कि उसका पतन अवश्यंभावी है। एक नारी ग़रीबी सह सकती है, रूखा-सूखा खाकर गुज़ारा कर सकती है, बीमार पति की दिन-रात सेवा कर सकती है। सास का क्रोध या गालियाँ सह सकती है, लेकिन वह यह नहीं सह सकती कि उसके पति के हृदय-मन्दिर में उसके सिवाय कोई और स्त्री क्षण भर के लिए भी स्थान प्राप्त कर ले। बड़े बड़े राजा-महाराजाओं के घर में सुख की—विलास की—सब सामग्री मिलती है, लेकिन फिर भी रानियाँ उन किसान स्त्रियों से ईर्ष्या करती हैं, जिनका हृदय-धन सदा उनका ही होकर रहता है। शेष इस संबंध में अगले पत्र में।

तुम्हारी हितैषिणी शारदा

जीवन-संगी का चुनाव—(२)

प्रिय इन्दु

मनुस्मृति में वर और वधू के चुनाव में निम्न सूचनाएँ दो गई हैं। यज्ञ याग तथा धार्मिक कार्यों से विहीन, पौरुष-विहीन, मूर्ख, शरीर पर बड़े बड़े लोमवाले, बवासीर, क्षय, मृगी, श्वेतकुष्ठ, उदर रोग के रोगी के साथ अत्यन्त धन-सम्पन्न होने पर भी विवाह-सम्बन्ध न करे। इसी तरह पीले वर्ण वाली, छै अंगुली आदि अधिक अंग वाली, रोमवती जिस के शरीर पर लोम बिलकुल न हों या बड़े-बड़े हों, व्यर्थ बोलने वाली, बिल्ली के सदृश पीले नेत्र वाली कन्या से विवाह न करे। सुन्दर अंग, उत्तम नाम वाली, हस्तिनी सदृश चाल वाली, सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश और कोमलांग व सुन्दर रसि वाली कन्या से विवाह करे। यद्यपि कन्या का विवाह हमारे समाज में अनिवार्य माना जाता है, तथापि स्मृतिकार

मनु इस बात पर विशेष बल देते हैं कि अयोग्य वर के साथ विवाह बिलकुल नहीं करना चाहिए। वह तो यहाँ तक कहते कि किसी गुणहीन को कन्या देने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि वह जन्म भर अविवाहित रहे। इतने स्पष्ट विधान होते हुए भी मुझे आश्चर्य होता है कि लोग क्यों अपनी कुमारी कन्या को निकम्मे अशिक्षित बीमार और बूढ़े लोगों के गले में बाँध देते हैं।

मैं शायद अपने मुख्य प्रसंग से दूर चली गई। आज से कुछ समय पहले तक विवाह में लड़के और लड़कियों की सम्मति बिलकुल नहीं ली जाती थी, अब वर्तमान शिक्षा की वृद्धि के साथ लड़कों की सम्मति ली जाने लगी है, किन्तु अभी लड़कियों की सम्मति लेने की आवश्यकता का बहुत कम लोग अनुभव करने लगे हैं। मेरा विचार यह है कि यह नारि जाति के प्रति हीनता की वृत्ति का द्योतक है। यदि लड़के अपने जीवन-संगी का चुनाव करने में स्वतंत्र हैं, तो कन्या को भी यह अधिकार होना चाहिए कि वह भी यह निश्चय करे कि किस प्रकार के जीवन-सहचर के साथ अपना समस्त जीवन बिताना चाहती है। मैंने—और शायद तुम ने भी ऐसे अनेक उदाहरण पढ़े हैं कि लड़का जगह-जगह कन्याओं को देखता है और उनके रूप, सौंदर्य, शिक्षा आदि की तुलना करता है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियित्री और लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में "प्राचीनता की दुहाई देने वाले

कुलों में बिना देखे-सुने जिस प्रकार उसका क्रय-विक्रय हो जाता है, वह तो लज्जा का विषय है ही, पर नवीनता के पूजकों में भी कन्या को बिकने के लिए खरीदे हुए पशु की तरह देखना कुछ गर्व की वस्तु नहीं। जिस प्रकार भावी पति के परिवार के व्यक्ति उसे चलाकर, हँसाकर, लिखा-पढ़ाकर देखते हैं, तथा अपने घर में लौट कर उसकी लम्बाई-चौड़ाई; मोटा-पन, दुबला-पन, नखशिख आदि के विषय में अपनी धारणाएँ बताते हैं, उसे सुनकर दासप्रथा के समय बिकने वाले दास-दासियों की याद आये बिना नहीं रहती।" वस्तुतः इस संबंध में स्त्री-जाति का सरासर अपमान किया जाता है और यह प्रथा प्रायः चली है सुशिक्षित घरों में। ऐसे समय वस्तुतः शील, स्वभाव, स्वास्थ आदि की परीक्षा नहीं होती, परीक्षा होती है केवल रूप-सौंदर्य की। मुझे स्मरण है कि एक वर महोदय विवाह के लिए जब बरात के साथ कन्या के शहर में पहुँच गये तब उन्हें ख़याल आया कि कन्या तो देखी नहीं, कहीं कुरूप न हो। विवाह-संस्कार से पहले कन्या का मुख देखने की माँग कर बैठे। कन्या के पिता परेशान, वर को बहुतेरा समझाया गया, पर वे नहीं माने। आखिर लड़की को पता लगा, उसने पिता से कहा—देखने दीजिये। सौभाग्य से कन्या सुरूप थी। वर को पसन्द आ गई, विवाह के लिए तैयार हो गये, किन्तु इस तेजस्विनी आत्माभिमानी कन्या ने कहा—आप ने मुझे पसन्द कर लिया, पर मैं आप के साथ अब

विवाह के लिए तैयार नहीं हूँ। वर महोदय परेशान से बोले—"आखिर क्यों ? क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ।" कन्या ने बड़ी दृढ़ता के साथ जवाब दिया—"नहीं श्रीमान, आपका स्वभाव मुझे पसन्द नहीं है। यदि मेरी आँख, नाक या कान में थोड़ा सा भी दोष होता, तो आप मुझे ठुकरा कर मेरे माता-पिता को सब के सामने अपमानित करने में संकोच नहीं करते, मुझे बदनाम करते हुए आप रत्ती भर भी नहीं विचारते। ऐसे दुष्ट मनुष्य को मैं जीवन-सहचर बनाने को तैयार नहीं।" लड़की को बहुत कहा गया पर वह टस से मस न हुई। आखिर वर देवता सारी बरात के साथ मुँह लटकाते हुए खाली हाथ वापस चले गये।

मैं यह कहना चाहती हूँ कि यदि लड़कों को यह अधिकार है, तो कन्याओं को भी होना चाहिए। लेकिन इससे कहीं यह न समझ लेना कि मैं यूरोप की प्रचलित 'कोर्टशिप' की नीति का समर्थन कर रही हूँ। प्रेम—स्वाभाविक और सहज प्रेम—का मैं निरादर नहीं करती, लेकिन मुझे भय है और मेरा भय निराधार नहीं है कि युवक और युवती की उम्र ऐसी अनुभव-शून्य होती है कि वे केवल वासना—शारीरिक उद्दाम काम वासना—के वशीभूत होकर केवल बाह्य सौन्दर्य की मदिरा पीने में मग्न हो जाते हैं। जीवन-सहचर के लिए आवश्यक तत्वों और गुणों का ये कतई विचार नहीं करते। यही कारण है कि सौंदर्य का नशा दूर होते ही या उससे भी सुन्दर वस्तु दृष्टि-गोचर होते ही उनमें कटुता उत्पन्न होते देर नहीं लगती।

यूरोप में प्रति दिन तलाकों की बढ़ती हुई संख्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। पश्चिम में विवाह धार्मिक बँधन नहीं है, वहाँ प्रेम मुख्य है और विवाह एक परस्पर समझौता है। जो दोनों पार्टियों की इच्छा पर टूट भी सकता है। परन्तु भारत में विवाह एक धार्मिक बन्धन है, वह टूटने वाला समझौता नहीं है। यह "जीवन का एक स्वाभाविक नियम, संयम और साधन है और इसका उद्देश्य है दो अधागों का समीकरण और उनकी अपूर्णताओं की परस्पर पूर्ति।" इसलिए हमारे यहाँ विवाह का परिणाम प्रेम है। जब तक विवाह-सम्बन्ध रहेगा, और हमारे यहाँ तो यह सँबँध टूट नहीं सकता, तब तक दोनों को एक दूसरे से प्रेम करना ही चाहिए। प्रेम करना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं, प्रेम पैदा हो भी जाता है। श्री कृष्ण कान्त मालवीय ठीक लिखते हैं—"विवाह एक विचित्र प्रथा है, इसके होते ही अपने बेगाने और ग़ैर अपने हो जाते हैं। दूसरों की मुहब्बत अपनों से अधिक हो जाती है। ज्यों ज्यों विवाह पुराना होता जाता है, दोनों के हित और स्वार्थ एक होते जाते हैं और गृहस्थ की गाड़ी चलती रहती है।" लेकिन इसके लिए जरूरी है कि चुनाव ठीक किया जाय और जब अनुभव-शून्य युवक व़ युवती में केवल उद्दाम वासना प्रबल हो, तो वे अन्य आवश्यक गुणों को नहीं देखते, इसीलिए धोखा खाते हैं। लेकिन इसका यह भी अर्थ नहीं कि युवक या युवती की राय न ली जाय। आखिर उन्हें ही एक साथ रहना

है। इसलिए मेरी सम्मति यह है कि माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे जो प्रस्ताव करें, उस पर संतान की सहमति प्राप्त करें और यदि युवक-युवती परस्पर कोई चुनाव करें, तो माता-पिता की अनुमति भी प्राप्त कर लें। माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे चुनाव करते समय दहेज, जात-पाँत आदि की अपेक्षा दोनों के स्वास्थ्य, सदाचार और जीविकोपार्जन की योग्यता आदि का विचार ही प्रमुखता से करें। इस तरह विवाह में आवश्यक प्रेम-तत्त्व और माता-पिता का दीर्घकालीन सांसारिक अनुभव दोनों का सुन्दर समन्वय हो सकेगा।

पूज्य पिता जी ने इधर-उधर प्रयत्न करके कुछ प्रस्ताव मेरे पास भेजे हैं, लेकिन मैं चाहती हूँ कि तुम्ही स्वयं चुनाव करके मुझे लिखो। संकोच न करो। मैं उनके चित्र भी तुम्हारे पास भेज रही हूँ।

एक सज्जन हैं। उम्र करीब २५ वर्ष। उनके घर में ज़मीन-जायदाद है करीब १०० बीघा। खेती के अलावा वे व्यापार भी करते हैं, गाँव में रहते हैं। स्वस्थ हैं। पढ़े-लिखे तो बहुत नहीं हैं, पर अखबार पढ़ लेते हैं। शहर की आबोहवा बहुत नहीं लगी। बहुत फ़ैशन नहीं रखते, न दुनिया के झमेलों में पड़ते हैं। अपनी खेती और अपने व्यापार में व्यस्त रहते हैं। उनकी माता का स्वर्गवास हो चुका है, सौतेली माँ है। उनके पिता भी भले मानुस हैं। उनके विचारों में आधुनिकता नहीं है, पुराने रीति-रिवाजों और लोकाचारों पर चलते हैं। खाना

पीना मोटा है, पर दूध-दही की कमी नहीं है। कभी-कभी मांस भी खाते हैं।

दूसरे सज्जन लाहौर शहर में रहते हैं। वकील हैं, नई शिक्षा से शिक्षित। अभी वकालत प्रारंभ की है, इसलिए ५०-६० रु० से अधिक नहीं कमाते, किन्तु आशा है कि वे आगे अधिक कमा सकेंगे। उनकी उम्र भी २६ वर्ष की है। उनका समाज आधुनिक वकीलों-डाक्टरों आदि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों का है। दीखने में वे उन जमीदार से अधिक सुरूप प्रतीत होते हैं, लेकिन उतने तन्दुरुस्त नहीं। उनका रहन-सहन आधुनिक है। उनके पिता गुज़र चुके हैं, माँ अवश्य है। सिगरेट के सिवाय अभी और व्यसन उन्हें नही है। घर के सनातनी विचारों के हैं। सुना है, उनके पिता को मिरगी का दौरा कभी कभी आता था।

तीसरे सज्जन भी लाहौर रहते हैं। एक सरकारी दफ़्तर में क्लर्क हैं। करीब १०० रु० वेतन है। आर्यसमाज के नियमित सदस्य हैं। वहाँ कभी कभी भाषण भी देते हैं। उम्र है २४ वर्ष। देखने-सुनने में अच्छे हैं, रंग यद्यपि गौरवर्ण नही है, तथापि श्यामवर्ण भी नही है। गेहुँआ रंग है। उन्नत ललाट और भरा हुआ चेहरा। सार्वजनिक सेवा में भी रुचि है। स्वभाव में कोई विशेषता नहीं है, यों मधुर भाषी हैं, संगति अच्छी है, जहाँ तक मालूम हुआ है पितृवंश में कोई रोग नहीं है।

एक और सम्पन्न व्यापारी के पुत्र हैं। उम्र है करीब ३० साल। पहली पत्नी का देहान्त हो चुका है। लखपति हैं; जालंधर में रहते हैं, हज़ारों रुपये माहवार की आमदनी है। सार्वजनिक कार्यों में रुचि नहीं है, अपने व्यापार से मतलब रखते हैं, थोड़ा बहुत दान भी देते रहते हैं। घर क्या है, एक सुन्दर महल है। ऐश-आराम से रहते हैं, घर में दासियाँ-नौकर हैं। संगीत से कुछ प्रेम है। स्वास्थ्य अच्छा है, पर कद ठिगना, शायद तुम से भी एक आध इंच कम, यों शरीर कुछ भारी है।

पाँचवें सज्जन फ़ीरोज़पुर में रहते हैं, इंजिनीयर हैं, ११० रुपये वेतन मिलता है। उम्र है २६ साल। उनके पिता मुलतान में रहते हैं। माँ भी है। पहले अध्यापिका थी, इसी कारण युवक को साहित्यिक रुचि भी है, कभी कभी पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते हैं। इकहरा बदन, गौर-वर्ण, स्वास्थ्य अच्छा है। बोलचाल में थोड़ी बहुत गरमी आ जाती है, सिगरेट ज़रूर पीते हैं, पर और कोई व्यसन नहीं। घर में कोई ज़मीन-जायदाद नहीं, बड़े कष्ट से माता ने स्वयं पढ़ा-पढ़ा कर कपड़े सी-सी कर पढ़ाया है, फिर छात्र-वृत्ति लेकर आगे पढ़े हैं।

कुछ और भी सज्जन थे, पर पिता जी ने इन में से चुनाव का निश्चय किया है। इसमें अपनी जाति के भी हैं और जाति से बाहर के भी हैं। पिता जी जात-पाँत को नहीं मानते और संभवतः तुम्हें भी कोई आपत्ति नहीं होगी। एक बात लिख दूँ,

मनुष्य-स्वभाव की साधारण त्रुटिएँ अपने प्रयत्न से दूर की जा सकती हैं। तुम चाहो, तो अपनी सखी-सहेलियों से पूछ लो, स्वयं भी समझदार हो, अपनी रुचि और स्वभाव देख तुम्हारी जो राय होगी, मैं पिता जी को लिख दूँगी। इनके बारे में कोई और जानकारी प्राप्त करनी हो, तो मुझे निस्संकोच लिख देना।

माता जी और पूज्य पिता जी को प्रणाम।

तुम्हारी हिताकांक्षिणी बहिन

शारदा

नये जीवन की देहली पर—

प्रिय इन्दु रानी,

तुम्हारी सगाई हो गई, इसके लिए तुम्हें सौ सौ बार हजार हजार बधाई। टीके के अवसर पर मैं सम्मिलित न हो सकी, इसका दुख तुम्हें जितना है, उससे अधिक मुझे है, पर मैं विवश थी। ननद की शादी से निश्चिन्त भी न हुई थी कि जेठानी के पास जाना पड़ा। उनके यहाँ एक बालक उत्पन्न हुआ है। प्रसवकाल में जाना आवश्यक ही था। वहाँ भी इतनी व्यस्त रही कि तुम्हें पत्र लिख कर बधाई भी न दे सकी। तुम सोचती होगी कि इतने बड़े-बड़े उपदेश देने वाली बहिन न समय पर उपस्थित हुई, न उसने बधाई भेजी। विवश थी, क्षमा करना।

तुम सचमुच सौभाग्यशालिनी हो। तुम्हारा चुनाव बहुत अच्छा हुआ है। पिता जी ने तुम्हारी बात स्वीकृत करली।

बह—अब तो मैं उन्हें बहनोई जी कहूँगी—आये और तुम दोनों ने परस्पर बातचीत करली, बड़ा अच्छा हुआ। तुम्हारी भी साहित्यिक रुचि है; उनकी भी। इञ्जिनीयर साहब के माता-पिता सम्पन्न नहीं है, उनके घर हज़ारों-लाखों रुपया नहीं है, तो क्या हुआ। इञ्जिनीयर साहब गुण-सम्पन्न हैं। वे स्वयं दहेज आदि प्रथाओं के विरुद्ध हैं, यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई। विवाह आगामी मास होगा। मेरी इच्छा थी कि अभी घर पहुँच जाऊँ, जहाँ माता जी को विवाह की तैयारी के कार्य में सहयोग दूँ, वहाँ अपनी प्यारी इन्दुरानी को—रानी बनने ही जा रही हो—भी अभी से सजाना शुरू कर दूँ। तुम्हारे लिए बढ़िया बढ़िया कपड़े बनवाऊँ। पर विवश हूँ, अभी १५ दिन तक और न आ सकूँगी। जेठ जी अप्रसन्न होंगे, आखिर इस समय भी सहायता न की, तो फिर कब उनकी सेवा करूँगी।

तुम अब एक डेढ़ मास तक नये जीवन में—समस्त जीवन के सुनहले, लेकिन उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन में प्रवेश करने जा रही हो। तुमने अब तक अनेक परीक्षाएँ पास की हैं और सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुई हो, किन्तु वास्तविक परीक्षा तुम्हारी अब होगी। अब तक माँ थीं, पिता थे और थे तुम्हारे भाई। तुम्हारे कामों पर, तुम्हारी चाल-ढाल पर कभी आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं देखते थे, तुम जो भी करती थीं, उसी में वे भी प्रसन्न थे। उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि तुम्हारे दोष

देखती न थी। इच्छा भी नहीं थी। तुम शरारत भी करती थीं, तो वे तुम्हारा बचपन कह कर टाल देते थे। तुम्हारी ज़िद को मनचलापन कहकर या 'बड़ी ज़िद्दी है' कहते हुए हँसकर तुम्हारी ज़िद पूरी करदी जाती थी। कभी रूठकर रोटी नहीं खाती थीं, तो माँ तुम्हें मनाती मनाती घण्टों बैठी रहतीं, लेकिन अब तुम नये जीवन में—नये घर में जा रही हो, जहाँ ये सब अनुभव नहीं होंगे। वहाँ सब नये व्यक्ति होंगे। कोई अपना परिचित नहीं होगा—सास, ससुर, ननद, देवर, पति सब नये और अपरिचित होंगे। तुम किसी के स्वभाव को नहीं जानती होगी और वे तुम्हारे स्वभाव से अपरिचित होंगे। वे तुम्हारी गति-विधि का निरीक्षण उसी स्नेह या वात्सल्य से नहीं करेंगे जिस से तुम अब तक परिचित थीं। वे अत्यन्त उत्सुकता और आलोचनात्मक दृष्टि से देखेंगे कि तुम किस प्रकार उठती हो, बैठती हो और बातें करती हो। तुम्हारे छोटे से छोटे कार्य की ओर उन की तीव्र दृष्टि जायगी। वे यह देखेंगे कि तुम ने अब तक क्या सीखा है? किताबों की विद्या वहाँ काम नहीं आयगी, वहाँ तो तुम्हारे व्यवहार और भाषण की परीक्षा होगी, तुम्हारे हृदय का अवलोकन होगा, यह देखा जायगा कि तुम घर के कामकाज में कितनी चतुर हो, तुम्हें आग जलाना आता है या नहीं, तुम आटा गूँदते समय बिखेर तो नहीं देतीं, तुम स्नान करके गीले कपड़े वहीं माँ या नौकर के लिए छोड़ तो नहीं देतीं, तुम सास-ससुर को प्रणाम करती हो या नहीं,

उनका आदर करती हो या नहीं ? तुम्हारी साग-सब्जी में ठीक नमक-मसाला उनकी रुचि के अनुसार होता है या नहीं। तुम्हें उनकी रुचि जान लेनी पड़ेगी। तुम सब से बातें करते समय अपने मुँह से फूल बिखेरती हो या नहीं ? तुम घमण्ड के कारण सब से अलग तो नहीं रहतीं या बहुत वाचाल तो नहीं हो, तुम उस घर के बच्चों को प्यार करती हो या नहीं तुम सवेरे कितने बजे उठती हो ? इन सब बातों की पूरी छान-बीन की जायगी। जहाँ चूकोगी, वहाँ तुम पर रियायत नहीं की जायगी, पर उलाहना दिया जायगा। वस्तुतः यह तुम्हारी परीक्षा नहीं होगी, हमारे माता-पिता की परीक्षा होगी, कि उन्होंने तुम्हें क्या सिखाया है ? यदि तुम उन्हें सन्तुष्ट कर सकोगी, तो वे न सिर्फ तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, बल्कि माता-पिता की भी प्रशंसा करेंगे। यदि तुम कहीं उनकी परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहीं, जिसकी मुझे कतई सम्भावना नहीं—तो वे तुम्हें जहाँ दो चार बातें कहेंगे, वहाँ तुम्हारी माँ को भी दो बातें सुनावेंगे, जिसे सुनकर तुम तिलमिला उठोगी। पर मुझे निश्चय है कि इसकी नौबत ही न आवेगी। तुम उनकी परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होगी।

पर जरूरत इस बात की है कि इसके लिए तुम अभी से प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन में यदि कोई कमी हो, तो उसे अभी से पूर्ण करने की ओर ध्यान दो। अपना जीवन नियमित कर दो। प्रतिदिन प्रातः उठते ही गुरुजनों को प्रणाम करने

की आदत डाल लो, सबसे बढ़कर मिष्ट भाषण का अभ्यास आवश्यक है, क्योंकि तुम सभी बातों से न केवल परिचित हो, बल्कि तुम्हारा जीवन भी संयत है । इसलिए तुम्हें ऊपर लिखीत परीक्षा में घबराने की जरूरत नहीं । जरूरत सिर्फ़ इस बात की है कि तुम अभी से और भी अधिक सतर्क हो जाओ ।

दूसरी बात, जिस दिशा में मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहती हूँ, यह है कि गृहस्थ-धर्म के संबन्ध में कुछ पुस्तकें तुम्हें पढ़नी चाहिएँ । गृहस्थ-जीवन के तीन मुख्य भाग हैं। एक विषय है व्यावहारिक—सास-ससुर विशेषतया पति आदि की रुचि का अध्ययन, उसके अनुकूल आचरण और मिष्ट-भाषण आदि । इसके लिए अनुभव और व्यावहारिक बुद्धि की आवश्यकता है । मुझे विश्वास है कि तुम काफ़ी समझदार हो और इस सम्बन्ध में तुम्हें कोई विशेष कठिनता न होगी। गृहस्थ-जीवन का दूसरा क्षेत्र है पति के साथ रहते हुए सन्तान-उत्पत्ति । यह विषय तुम्हारे लिए बिलकुल नवीन और अपरिचित है । परन्तु इसलिए घबराने की कोई चिन्ता नहीं । तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि तुम्हारे शरीर की रचना कैसे हुई, उस में भिन्न भिन्न अङ्गों की रचना कैसी है, उनका कार्य क्या है ? उत्पादक अङ्गों की रचना, मासिक धर्म, गर्भाशय, गर्भधारण आदि के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं । माता-पिता इस सम्बन्ध में कन्या को कुछ बातें बताने में

संकोच अनुभव करते हैं, पर उनकी यह ग़लती है। गृहस्थ जीवन के साथ इनका इतना अधिक सम्बन्ध है कि थोड़ी सी भूल के कारण बहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं। यौवन की उद्दाम वासनाओं की तृप्ति के लिए भी जो आज के संसार में अनिवार्य हैं, इस विषय का ज्ञान आवश्यक है। पत्र में इस विषय पर प्रकाश डालना कठिन होगा, इसलिए मैं तुम्हें दो एक दिन में कुछ पुस्तकें भिजवाऊँगी, वे तुम पढ़ लेना। इस संबन्ध में अनेक लेखकों और प्रकाशकों ने कामशास्त्र और कोक शास्त्र आदि के नाम से पुस्तकों की बाज़ार में भरमार कर दी है, लेकिन उन से कोई लाभ नहीं। वे कामुकता को बढ़ाती हैं, लेकिन मैं इतना अवश्य कहना चाहती हूँ कि इस सम्बन्ध में बिलकुल अजान रहना भी हानिकर है। यह चाहे आदर्श हो या नहीं, सचाई यह है कि विवाह का आज कल एक उद्देश्य इस शारीरिक वासना की एक सीमित और संयत रूप में तृप्ति भी है और इसीलिए इस सम्बन्ध में स्त्री को अजान नहीं रहना चाहिए। वासना यौवन का तकाज़ा है। मेरी एक सखी की बहुत अधिक संकोचशीलता से सोहाग रात को उसके पतिदेव रुष्ट हो गये। नतीजा यह हुआ कि पति देवता ने निश्चय कर लिया कि छः मास तक वे उसके पास नहीं जायेंगे। पति की माता हैरान, स्त्री स्वयं भी हैरान, पर किसी को कारण मालूम नहीं हुआ। पतिदेव छः मास तक अलग कमरे में सोये। दिन में तो परदे के कारण घर में स्त्री बात ही नहीं

कर सकती थी, इसलिए छः मास बीतने पर ही मेरी सखी को मालूम हुआ कि उसके अत्यन्त संकोच ने पति के हृदय को दुःखित कर दिया था। इसीलिए मैं यह आवश्यक समझती हूँ कि गृहस्थ के इस आवश्यक धर्म के बारे में विवाह करने वाली युवती को पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। अनेक गृहस्थ इसी अज्ञान के कारण कष्ट पाते हैं। इस सम्बन्ध में यदि समय मिला, तो फिर तुम्हें कुछ और बताऊँगी।

गृहस्थ जीवन का तीसरा मुख्य भाग है, सन्तान-पालन, इसकी यद्यपि तुम्हें जल्दी नहीं है, तथापि इस संबन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना अच्छा होगा।

तुम्हारे पति की रुचि साहित्यिक है, इसलिए अच्छा हो कि इस सम्बन्ध में अपना ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न करो। पर सब से बड़ी बात यह है कि अपने स्वास्थ्य को कायम रखने और बढ़ाने का प्रयत्न करो। स्वास्थ्य में ही सच्चा सौंदर्य है। स्वस्थ चेहरे की सुन्दरता के लिए गहनों की ज़रूरत नहीं।

पत्र समाप्त करने से पूर्व एक बार फिर तुम्हारे भाग्य के लिए तुम्हें बधाई। मंगलमय भगवान तुम दोनों को चिरंजीव रखेंगे। जल्दी ही घर आने का प्रयत्न करूँगी।

हिताकांक्षिणी बहन,

शारदा

परीक्षा में खरी उतरना

प्रिय इन्दु रानी,

पिछले २०-२५ दिन कैसे आनन्द से बीत गये, पता भी नहीं लगा। हँसते-खेलते, गपशप करते, विवाह की धूमधाम और तैयारियों, बरात का स्वागत-सत्कार करते और माँ, भाई बहन के साथ हँसी-खुशी में सब दिन बीत गये। अब फिर वही घर के पुराने काम काज। संसार का यही चक्र है।

अभी माता जी का पत्र आया था। वे बहुत उदास हैं। यों तो हम सब के चले आने से घर सूना हो गया है, पर तुम्हारे जाने को वे बहुत महसूस कर रही हैं। रात दिन उन्हें यही चिन्ता लगी रहती है कि न जाने तुम कैसी होगी? स्नेहमयी और प्रेममूर्ति तुम्हारे वियोग में रोती रहती हैं। उनका बश होता, तो वह तुम्हें कभी अपने से अलग न करतीं। पर रानी, बेटियाँ सदा पराये घर की होती हैं। इन्हें पालो, पोसो, पन्द्रह

वर्ष रखो तो, बीस वर्ष रखो तो अन्त को ब्याहना पड़ता है। तुम यह न सोचना कि माता-पिता ने खाने-पीने के बोझ से घबरा कर अपने सिर से भार उतारा है। बहिन, सन्तान का खाना-पीना किसी को बुरा नहीं लगता। पर बड़े बड़े चक्रवर्ती राजाओं और महाराजाओं ने भी जिनके धन-वैभव का पार नहीं और जिनके दरवाजों पर सैकड़ों मनुष्य और पशु नित्य ही पेट पालते थे, अपनी बेटियाँ बिन ब्याही नहीं रखीं। बेटियाँ होती ही इसलिए हैं कि पाल-पोस कर वे दूसरे के हवाले कर दी जावें। पुरानी कहावत है कि "बेटी हुई भी बुरी, और मुई भी बुरी।" बहिन, हमारा भाग्य ही ऐसा है।

तुम्हें भी जरूर अपनी माँ, अपने पिता और छोटे भाई बहिन याद आते होंगे। उनकी हँसी, उनका खेल-कूद और रोना धोना, रूठना सब बातें एक एक कर के याद आती होंगी। अपने घर के पास पड़ोस के बच्चे और सहेलियाँ तुम्हें कभी, न भूलती होंगी। ससुराल में तुम्हारा एक भी परिचित नहीं। न सास को जानती हो, न पति को, न ननद को जानती हो और न ससुर को। सब बेगाने से लगते हैं, लेकिन सचाई यह है कि इनमें से कोई भी बेगाना नहीं। सभी तुम्हारे हितू हैं। जरूरत इस बात की है कि इनको अपनाने का प्रयत्न करो। अब तो तुम्हारा समस्त जीवन इन्हीं में व्यतीत होगा। माता-पिता को भूल नहीं सकतीं और न भूलना ही चाहिए,

लेकिन अब सास को अपनी माँ समझो और ससुर को पिता का स्थान दो, ननद को बहिन के बराबर समझो।

एक बात याद रखना कि प्रारंभ में तुम्हें इन सब से आदर तो मिलेगा, पर प्यार व सच्चा वात्सल्य नहीं। वे शिष्टाचार वश या लोक-दिखावे के लिए तुम्हारी सुख-सुविधा का ख़याल कुछ दिन अवश्य रखेंगी, तुम से घर का बहुत थोड़ा काम लिया जायगा, लेकिन उनका दिल जीतने के लिए तुम्हें स्वयं परिश्रम करना होगा। वे तुम से स्वयं कम काम लेंगी, लेकिन इसके साथ ही वे तुम्हारे एक एक काम पर अपनी तीखी नज़र भी रखेंगी। वे मन ही मन, यदि तुमने उनकी रुचि के अनुसार काम न किया तो आलोचना करेंगी और परस्पर भी चर्चा करेंगी। वे तुम्हें सवेरे न उठावेंगी। तुम्हें काम-काज के लिए न कहेंगी, इसलिए नहीं कि वे तुम्हारा सवेरे उठना और काम में सहयोग देना पसन्द नहीं करतीं, परन्तु कुछ लोक-लाज कि नई बहू को चार दिन भी आराम नहीं करने दिया और कुछ तुम्हारी परीक्षा के ख़याल से वे काम नहीं लेंगी। बहुत समय ऐसे ही अवसरों पर अनेक नासमझ लड़कियें आलसी हो जाती हैं, देर से उठती हैं और घर के काम-काज से गाफ़िल हो जाती हैं। मेरी एक सहेली है कान्ति। बहुत समझदार है। साल भर तक उसकी सास ने उसे काम करने के लिए नहीं कहा। परिणाम यह हुआ कि वह यह समझने लगी कि घर में मुझे कोई काम ही नहीं है, सास काम कर रही है। सवेरे

७–८ बजे उठने लगी, आलस्य स्वभाव का अंश हो गया। इसके बाद जब कभी सास अस्वस्थ भी हुई, वह काम से जी चुराने लगी। सास एक दिन मेरे सामने दुखड़ा रोने लगी। मैंने कहा कि आप ही ने तो उसे साल भर तक काम न करने देकर सुस्त व आलसी बनाया है। उसने बड़ी शान्ति के साथ जवाब दिया—वह तो नई बहू थी, लोग नई जूती को भी झाड़-पोंछ कर अलमारी में रखते हैं। बहू को आराम न देती, तो दुनियाँ क्या कहती? यह एक उदाहरण है। अस्सी सदी सासों और बहुओं का यही हाल होता है। इसलिए यदि सासें अपनी कर्त्तव्य-बुद्धि, परीक्षा अथवा लोकाचारवश बहुओं को काम न करने दें, तो भी बहुओं का यह कर्त्तव्य है कि वह यथा संभव सब काम स्वयं करने का प्रयत्न करें अथवा सास को पूरी तौर से सहायता अवश्य दिया करें—उनका आदर करते हुए—ऐसा प्रतीत न हो कि बहू खुद सारा रसोई का काम हथियाना चाहती है। रसोई तो घर में एक बड़ा भारी राज्य है, जिस पर गृहस्वामिनी का अधिकार होता है और इसे वह आसानी से छोड़ने को तैयार नहीं होती। और इसलिए जब तक उनके रंग-ढंग से परिचित न हो जाओ, उस समय तक उनके कामों में हस्तक्षेप न करना।

बहू को साधारण शिष्टाचार का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। प्रातःकाल पति के उठने से पूर्व उठकर गुरुजनों को पहली बार मिलने पर प्रणाम करना चाहिए। यदि घर में नौकर

नहीं है, तो स्वयं झाड़ू आदि के काम में सास की मदद करनी चाहिए। प्रथा के अनुसार दुलहिनों की भाँति लूली-लंगड़ी बनकर खाट पर बैठे रहना भी उचित नहीं और न एक दम उनके कार्य में हस्तक्षेप करके समस्त गृह-कार्य पर अधिकार भी कर लेना अच्छा है। ज्यों ज्यों धीरे धीरे वहाँ के रंग-ढंग से परिचित होती जाओ, त्यों-त्यों घर-बार के प्रबंध को अपने हाथ में करते जाना। मान-मर्यादा से बैठना, आदर-पूर्वक और विनय के साथ बातचीत करना, न इतना चुप रहना कि कोई गूंगी कहे और न इतना चपर-चपर बोले जाना कि कोई बकवादी कहने लग जाय।

जहाँ सास-ससुर की रुचि जानने का यत्न करो, वहाँ पति देव की रुचि भी पहचानने का प्रयत्न करो। पति को शास्त्रों में देवता कहा है। आज के लोग और पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इसे स्वीकार नहीं करतीं। मुझे भी आज यह आग्रह नहीं कि पति देवता है, या नहीं। इस पर मैं अपने विचार फिर कभी लिखूँगी। पति देवता हो या नहीं, पर इतना तो निश्चित है कि वह तुम्हारा अपना है; जिसे तुम सर्वस्व सौंप चुकी हो और जिस के हाथों में पिता जी ने तुम्हारा हाथ दिया था, वे तुम्हारे प्राण-प्रिय हैं, जीवन-सहचर हैं। उनके साथ तुम्हें समस्त आयु बितानी है। दुख में सुख में—जीवन की विपत्तियों और प्रसन्नता में तुम दोनों को एक साथ अपनी जीवन-यात्रा पार करनी है, इसीलिए तुम दोनों के लिए एक दूसरे की रुचि

को जानना ज़रूरी है। उनकी जो रुचि हो, उसे जानने का प्रयत्न करो। यह देखो कि वह अख़बार में रुचि रखते हैं, तो तुम भी अख़बार पढ़कर संसार के समाचारों से अपने को परिचित रखो। यदि उन्हें आर्य-समाज से प्रेम है, तो आर्य-समाज के सिद्धान्तों की जानकारी तुम्हें भी कर लेनी चाहिए। यदि वह कांग्रेस के आन्दोलन में दिलचस्पी रखते हैं, तो इधर तुम भी अज्ञान में न रहना। इसी तरह यदि वह अस्पर्शता को पाप समझते हैं, तो तुम भी छूतछात को भगा दो।

केवल विचारों की एकता ही नहीं, उनकी व्यावहारिक रुचि का भी तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। वह किस प्रकार का भोजन पसन्द करते हैं, मसाला कम खाते हैं या ज्यादा; दही पसन्द करते हैं या नहीं। उन्हें भोजन के बाद पान पसन्द है या नहीं, पान में भी इलायची या तमाखू चाहते हैं, आदि आदि विस्तार की बातों को तुम जान लो। उनकी आवश्यकताओं को समय पर उनके बिना कहे पूरा करते जाना तुम्हारा कर्तव्य है। विवाह से पूर्व उनकी ये सब आवश्यकताएँ माता पूर्ण किया करती थी, पर अब यह सब कार्य तुम्हारे हैं। यह सब कार्य पुरुष के हैं भी नहीं; वह बड़े बड़े पहाड़ तोड़ सकता है, वह समुद्र पार कर सकता है, वह दिन रात एक करके बड़े बड़े दुर्भेद्य किलों को तोड़कर हज़ारों शत्रुओं के सिर तलवार से उतार सकता है। इन सब कामों को करते समय उसे कोई संकोच नहीं होता, लेकिन जब उसे अपनी कमीज़ का टूटा हुआ बटन

लगाना पड़े; या भोजन के बाद पान खाने वाले को पान न मिले, दफ़्तर जाते समय उसे बूटों की तलाश करनी पड़े, तब वह खीज जाता है, उसके क्रोध का पार नहीं रहता। इन कामों के लिए जिस साधारण से धैर्य की जरूरत है, उसका उसमें सर्वथा अभाव होता है। प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि उसकी स्त्री जहाँ उसकी जीवन-संगिनी बनकर रहे, वहाँ वह यह भी चाहता है कि जरूरत पड़ने पर वह माता की आवश्यकताओं को भी पूर्ण करे। बड़े-बड़े भीषण समरों में न घबराने वाला पुरुष रोगशय्या पर पड़ा घबरा उठता है और यह चाहता है कि माँ आकर उसके सिर को दबा दे। "वह सुश्रुषा के लिए तड़पता है। वह अपनी पत्नी से केवल रमणीत्व की आशा नहीं करना, मातृत्व के स्नेह और वात्सल्य की आशा भी करता है। उसकी इच्छा होती है कि उसकी स्त्री न केवल बेटी की भाँति सेवा और पत्नी की भाँति केवल अपने प्रेम का आश्वासन दे; बल्कि माता की भाँति उसे अपनी ममता की छाया तले ले ले। पुरुष-स्त्री के आगे सदा बालक है और यही स्त्री की शक्ति का रहस्य है।" महाभारत में एक पत्नी का आदर्श चित्र इन शब्दों में रखा गया है–

"प्रिय भाषिणी पत्नियाँ जन-शून्य स्थान में मित्र के समान होती हैं। वे ही धर्म-कार्यों में पिता की तरह सलाह देने वाली, और दुःखित व रोगी पुरुष की माता के समान होती हैं।"

श्री रामचन्द्र भाई लक्ष्मण से कहते है—"मेरी पत्नी सीता विचार के समय मंत्री, काम-काज के समय दासी, धर्म-कार्य में पत्नी, सहिष्णुता में पृथ्वी, स्नेह करते हुए माता, विलास के समय रमा और खेल-कूद में मित्र की तरह है।" इतना ऊँचा पद पाने के लिए सब से अधिक आवश्यक है कि पत्नी पति की रुचियों और आवश्यकताओं का अध्ययन कर ले। जब घर में और कोई मित्र न हो, पति जीवन-संग्राम के कठोर संघर्ष या किसी अन्य कारण से खिन्न हो, तो उस समय मन लुभाने वाली या उत्साह देने वाली मधुर-वाणी से उनमें उत्साह का संचार करना तुम्हारा कर्त्तव्य होगा। जब वे बाहर से किसी प्रतिष्ठित नेता का भाषण सुनकर या अखबार का एक लेख पढ़कर उस पर चर्चा करने के लिए उत्सुक हों, तो एक सहचारी की भाँति उस चर्चा में भाग लेना भी तुम्हारा कर्तव्य है, जब वे शहर से थके-हारे आवें, तो दरवाजे पर अपने प्रेमल नयनों की मधुर दृष्टि ओठों पर मुस्कराहट और मधुरवाणी से उनका स्वागत करना, उनके लिए पानी-नाश्ता लाना तुम्हारा एक प्रमुख कर्त्तव्य होगा।

पुरुष के अन्दर पुरुषत्व का एक अहंकार होता है। पुरुष चाहे कितना सुशील और नम्र हो उसके हृदय के किसी कोने में यह अहंकार अवश्य छिपा होता है कि मैं पति हूँ। यह मेरी पत्नी है। यह अहंकार सदियों के संस्कारों का फल है अथवा

स्वाभाविक, यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है, किन्तु इस अहंकार की सत्ता एक कठोर सत्य है और इस अहंकार की तृप्ति तुम अपनी मधुर वाणी से उसे अपना प्रेम देने का आश्वासन देकर, उसकी बार-बार प्रशंसा करके, कर सकती हो। इसके लिए, तुम्हें जिन गुणों की आवश्यकता है, वे हैं—

मधुरवाणी, रमणीत्व और सतीधर्म।

मधुरवाणी का गृहस्थ-जीवन की सफलता में सब से अधिक महत्त्व है। मीठी वाणी जीवन के भारी से भारी संताप पर ठण्डक पहुँचाने वाली मरहम का काम करती है। अपनी वाणी में माधुर्य और मिठास घोल कर चलोगी, तो जहाँ संसार के अनेक छोटे बड़े कष्टों को तुम आसानी से पार कर सकोगी, वहाँ पति के हृदय को भी सदा वश में रख सकोगी। भर्तृहरि के एक प्रसिद्ध श्लोक का आशय यह है कि केयूर-आभूषण, चन्द्रोज्वल हार, सुगंधपूर्ण उबटन, पुष्प आदि से पुरुष या स्त्री की शोभा नहीं बढ़ती, ये सब आभूषण और रूप-सौन्दर्य तो नष्ट हो जाते हैं, केवल एक वाणी नष्ट नहीं होती और वही सच्चा सौन्दर्य प्रदान करती है।

दूसरी वस्तु रमणीत्व है। प्रत्येक प्राणी सौंदर्य चाहता है। इसलिए अपनी वेश-भूषा और शृंगार की ओर से उदासीन न होना। अपने आकर्षण को कम न होने देना। इसके लिए

परिष्कृत रुचि की तुम में कमी नहीं है। सादगी का अर्थ मैला कुचैला रहना और बाल बिखेरे रहना नही है। साफ़-सुथरे वस्त्र कलापूर्ण रीति से, पहनने और उचित शृंगार से आकर्षण बढ़ता है। जैसो आज तुम नई नवेली सजी-सजाई बहू हो, इसी सुन्दर रूप को सदा कायम रखना आवश्यक है।

सती धर्म की प्रशंसा में हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। सीता, सावित्री और दमयन्ती की कथाओं से हमारा साहित्य पूर्ण है। बहुधा आज की संकोचशील नारी सती होते हुए भी अपने व्यवहार से पति पर अपना सतीत्व प्रकट नहीं कर सकती। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह पति को अपनी मधुर वाणी और सच्ची सेवा से यह विश्वास कराती रहे कि वह सदा उसकी है और किसी दूसरे के प्रति कभी वह बुरा विचार नहीं रखती।

उन तीन गुणों से तुम अपने पति के उस अहंकार भाव को तृप्त कर सकती हो. जिस के तृप्त होते ही वह तुम्हारा वशवर्ती हो जायगा।

मैंने पिछले पत्रों में मनुष्य की उद्दाम शारीरिक वासना की बहुत कम चर्चा की है, लेकिन इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता। यह वासना चाहे अच्छी हो या बुरी, परन्तु संसार में इसका महत्व किसी कदर कम नही है। वेद और गीता के अमृतमय उपदेश, सन्तों और महान् पुरुषों की हजारों शिक्षाएँ और संयम व ब्रह्मचर्य के आदर्श इस वासना को नष्ट नहीं

कर सके हैं और यह वासना, जब तक इस संसार में कोई भी नर या मादा प्राणी है, तब तक अवश्य कायम रहेगी। इस वासना की पूर्ति नर व नारी दोनों के लिए आनन्ददायक और अकल्पनीय सुखदायक है, लेकिन कभी कभी नारी का अत्यधिक संकोच इसमें बाधा उत्पन्न कर देता है जैसा कि मैं पिछले पत्र में एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर चुकी हूँ। इसलिए जहाँ तुम माता या बहिन की कमी पूर्ण करोगी, वहाँ इस दिशा में उदासीन होने से पति की ऐसी विरक्ति मोल ले लोगी, जिस की पूर्ति फिर हज़ार कोशिश करने पर भी पूर्ण न होगी, लेकिन इसके साथ-साथ यह भी न भूलना कि वासना-पूर्ति का अर्थ समय की सीमा को पार करना नहीं है। एक सीमा में संयत भोग और आनन्द मानव के हृदय का विकास करते हैं, लेकिन उससे आगे बढ़कर ये उसके स्वास्थ्य को नष्ट करने में भयंकर विष का काम करते हैं। अपनी इन्द्रियों पर असंयम और बेलगाम भोग मानव प्राणी के उत्साह, साहस और हृदय, मस्तिष्क व शरीर की स्वस्थता को नष्ट कर डालता है।

जापान में विवाह के अवसर पर माताएँ कन्या को जो उपदेश देती हैं, वे बहुत उपयोगी हैं। ये वहाँ 'वधू को १२ आदेश' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वहाँ कन्या की माता कहती है— "हे कल्याणी, विवाह समाप्त होने के बाद तुम हमारी नहीं रही। इतने दिनों तक तुम जिस प्रकार हमारे अधीन थीं,

अब उसी प्रकार अपने सास-ससुर के अधीन हुई। स्वामी- के चरित्र पर कभी भी सन्देह न करना, क्योंकि तुम पर तुम्हारे स्वामी का अब पूर्ण अधिकार है, अब वही तुम्हारे स्वामी हैं। स्वामी की आज्ञा सदैव शिरोधार्य होती है। पति यदि ग़लत राह पर हो तो शान्ति के समय उसे अपनी मीठी वाणी से समझा देना। थोड़ा बोलना। अपने पास-पड़ोस के लोगों से कभी भी कड़वी बातें न करना और सदा सच बोलना। प्रातःकाल सब से पहले उठना और रात्रि में सब से पीछे सोना। सास के प्रति तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल सरल और विनम्र हो। जहाँ तक हो सके अपनी गृहस्थी की सब से अच्छी संचालिका होना, इत्यादि।" और कई साधारण बातें हैं। अन्त में जापान की माताओं द्वारा अपनी कन्याओं को, दो उपदेश अत्यधिक सराहनीय दिये जाते हैं। वे ये कि—उस की माता कहती है, "यद्यपि तुम्हारा व्याह युवावस्था में हुआ है, पर युवक-समाज से सदा अलग रहना और पितृवंश की पद-मर्यादा अथवा धन का अहंकार न करना।

पत्र शायद लम्बा हो गया। माता जी का पत्र आया था, वह तुम्हें बुलाने को उत्सुक हैं। तुम्हारा दिल भी वहां आने को करता होगा। जब भी यहाँ आओ, मेरे पास भी जरूर आने का प्रोग्राम बनाना।

तुम्हारी हितैषिणी

शारदा

गुलाब के फूल में काँटे भी होते हैं

प्रिय इन्दु

तुम घर आईं। लेकिन न मैं स्वयं घर आ सकी, न तुम्हें यहाँ ही आने का अवसर मिल सका। घर-गृहस्थी के झंझट ही ऐसे थे। कभी कोई निकट-संबंधी बीमार है तो कभी किसी के यहाँ विवाह है। तुमसे मिलने की बड़ी आस थी, पर ऐसा संभव नहीं हो सका। इच्छा थी कि सितम्बर में तुम्हारे जीजाजी को छुट्टी मिलेगी तभी आऊँगी, लेकिन उधर तुम्हें एक दम बुलावा आ गया और तुम्हें विवश होकर जाना पड़ा। ऐसे ही अवसरों पर कभी कभी दिल में ख़याल होता है कि क्यों हम लड़कियों के रूप में इस संसार में आईं। हमारे भाइयों को तो कभी अपने माता-पिता से बिछुड़ना नहीं पड़ता। लेकिन यह संसार है। इसमें जीवन-यात्रा के सबसे बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व हमारे ही सिर

पर है, यद्यपि इसका आडम्बर कोई नहीं है, इसके लिए हमें वाहवाही नहीं मिलती और न इसमें किसी प्रकार का कोई रस ही प्रतीत होता है। इससे यह न समझना कि मैं गृहस्थ की निंदा कर रही हूँ। गृहस्थ तो समस्त जीवन की आधार-शिला है। जिस तरह आधार-शिला की ईटें दर्शकों को न दीखते हुए भी ऊपर के आलीशान गुम्बज व दरवाज़े के चित्रित पत्थरों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, इसी तरह एक गृहस्थ नारी की अज्ञात और मूक सेवा संसार-यात्रा के लिए सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्व को बाहरी आडंबर की आवश्यकता नहीं है।

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ था कि तुम बहुत सुखी हो, बहनोई जी तुम्हारी प्रत्येक भावना का आदर करते हैं, प्रतिदिन तुम उनके साथ सवेरे के समय घूमने निकलती हो, कभी कभी सिनेमा आदि भी देख लेती हो, वे कभी कभी रेशमी साड़ी, ईयररिंग अथवा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ ला देते हैं। यह सब जान कर बड़ी खुशी हुई। इसमें संदेह नहीं कि तुम भाग्यशाली हो; मंगलमय भगवान तुम दोनों को सदा प्रसन्न व सकुशल रखें, तुम्हारा आपसी प्रेम सदा बढ़ता रहे। लेकिन यह याद रखना कि गुलाब के मनोरम फूल के साथ काँटे भी होते हैं, उनसे बचने के लिए अत्यन्त सतर्कता और सावधानी की ज़रूरत है। पिछले पत्र में मैंने इस संबंध में कुछ सुझाव रखे थे। आज उन्हीं के संबंध में कुछ और सुझाव

रखना चाहती हूँ।

तुम ने लिखा है कि वे तुम्हें प्रायः कोई न कोई उपहार दिया करते हैं या सिनेमा आदि भी कभी कभी दिखाते रहते हैं। यह उनके प्रेम का चिन्ह है, वे बड़ी उमंगों के साथ अपने दिल की रानी पर सर्वस्व अर्पित करने के लिए तैयार हैं। क्यों न हों, मेरी बहिन भी तो गुणों की आगर है। लेकिन एक बात का ख़याल रखना। ऐसे ही अवसरों पर कभी कभी अपव्यय हो जाता है,—अपव्यय का स्वभाव सा पड़ जाता है। आख़िर एक नियत आमदनी में ही घर के सब ख़र्च पूर्ण करने पड़ते हैं। और भविष्य के लिए भी कुछ न कुछ बचाना पड़ता है। अभी तुम पर गृहस्थी का भार नहीं पड़ा है,—फिर उनके माँ हैं, पिता हैं और कुछ समय बाद तुम्हारी भी गोद भरेगी, उस समय ख़र्च बढ़ जायेंगे। सौ-सवा सौ रुपये होते ही कितने हैं—बात की बात में ख़र्च हो जाते हैं। इस समय प्रेमवश होकर वह इसकी चिंता न करें, लेकिन तुम्हें तो सोचना है। आख़िर तुम और वह एक ही हैं, वह ख़र्च करते हैं तो या तुम स्वयं व्यय करती हो तो बात एक ही है, एक ही घर का पैसा जा रहा है। इसलिए कभी कभी अत्यन्त स्नेह के साथ उनकी भावना का आदर करते हुए इस प्रकार के उपहारों में कमी कर देने का अनुरोध किया करो। मैं एक परिचित सखी का हाल जानती हूँ। उसके पति भी अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे, और प्रायः कुछ न कुछ उपहार उसके

लिए ला देते थे। वह बड़ी प्रसन्न थी। यह स्वाभाविक भी था—आज की सभ्य कही जाने वाली नारी भी अपने सौंदर्य की वृद्धि में लगी रहती है। कपड़ा-लत्ता बनाव-शृंगार यही उसके जीवन का ध्येय प्रतीत होता है—पहले भी शायद यही उद्देश्य था और आज भी। स्मृतिकार मनु ने स्त्रियों की पूजा का उपदेश देते हुए यही तो लिखा है—ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुषों को चाहिए कि आभूषण, वस्त्र, भोजनादि योग्य रीति से देकर स्त्रियों को सदा उत्सवादि के समय प्रसन्न रखा करें। सदा से ही स्त्रियाँ गहनों को पसंद करती आई हैं। इसी के कारण वे बहुधा अपने पतियों से भी लड़ती रहती हैं। यही गहने हैं, जिनके कारण बड़ी सुखद गृहस्थियाँ नष्ट हो जाती हैं और इसी इच्छा की पूर्ति के लिए आदमी सैकड़ों कष्ट उठाते हैं। मुंशी प्रेमचंद का लिखा हुआ 'ग़बन' उपन्यास तुमने अवश्य पढ़ा होगा। स्त्री को सुंदर गहने पहनाने के उद्देश्य से ही उसे ग़बन करना पड़ा और अंत में सालों तक जेल की हवा खानी पड़ी थी। आज भी संस्कृत और सुशिक्षित होने के बावजूद नारी की यह शृंगार-रुचि और आभूषण-प्रेम कम नहीं हुआ है। मैं तो कहना चाहती हूँ कि पहले से भी कुछ बढ़ गया है। मेरी सखी भी प्रायः दूसरे चौथे दिन उपहार लेते हुए प्रसन्न होती थी। लेकिन यह गाड़ी कब तक चलती। पतिदेव ने शनैः शनैः खर्च में कमी की, जिम्मेदारियाँ बढ़ गई थीं, लाचार थे। लेकिन पत्नी का तो स्वभाव लेने

का हो गया था। उसकी सम्मति में पति का यह आवश्यक कर्तव्य था कि वह उसके लिए उपहार लाया करें। यदि वह ऐसा नहीं करते, तो वह उसे प्रेम नहीं करते। बस, यह भावना पैदा होने की देर थी कि घर में कलह का सूत्रपात हो गया। वह आज तक दूर नहीं हुआ। आज उसके पति कहते हैं कि मैंने पंजाबी कन्या से विवाह करके ग़लती की। इसलिए मैं तुम्हें यह सलाह दे रही थी कि ख़र्चों का खयाल रखना। पतिदेव से अनुरोध करना कि वे कीमती उपहार यदा-कदा ही दिया करें, किंतु ऐसा करते समय यह भी खयाल रखना कि उनके प्रेमल हृदय को चोट न पहुँचे। जिस मन के साथ कोई चीज़ लाते उसे ठुकरा देने से उनके हृदय को चोट लगेगी। इसलिए अत्यंत मधुरता व स्नेह के साथ उन्हें समझाना कि मितव्यय में हम दोनों का ही लाभ है। इसी तरह सिनेमा आदि मनोरंजनों का भी प्रश्न है। मैं यह नहीं कहना चाहती कि सिनेमा कभी जाया ही न करो, क्योंकि मैं समझती हूँ कि जहाँ इनसे बीसियों प्रकार की बुराइयाँ हैं, वहाँ आज के शिक्षित युवक और युवती को शिष्टाचार और परस्पर मधुर भाषण का ज्ञान थोड़ा-बहुत अवश्य हो जाता है, और उससे समझदार युवक-युवतियाँ अपने जीवन में सरसता ला सकती हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सभी प्रकार के खेल देखे जावें। कुछ चुने हुए विचारोत्तेजक कलापूर्ण खेल देखने से कलाप्रियता, साहित्यिकता और

विभिन्न प्रकार के प्रश्नों पर विचार करना आदि गुण पैदा होते हैं, जिनको आज का युवक चाहता है। सिनेमा आज इतनी दूर तक फैला हुआ व्यसन है कि एक साधारण युवक यह स्वभावतः चाहता है कि वह अपनी पत्नी—और उससे बढ़ कर कोई साथी नहीं—के साथ इस प्रकार के खेल देखकर मनोरंजन प्राप्त करे। बिलकुल भोली और 'महाशय' लड़की बनकर पति को सिनेमा के विरुद्ध उपदेश देने से वह तुम्हें फूहड़ समझ सकता है। इसलिए सिनेमा आदि देखा करो, लेकिन कभी कभी और अत्यन्त अच्छे खेल ही।

यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपने पति के हृदय पर यह बात बिठा दो कि उन दोनों के हित में मितव्यय आवश्यक है। जो बचेगा वह उन दोनों के ही काम आवेगा। इससे वह तुम्हारी सूझ और दूरदर्शिता के प्रशंसक हो जावेंगे।

गृहस्थ-जीवन को सुखी और उससे भी अधिक शान्त रखने के लिए एक और चीज़ की मैं तुम्हारे विवाह के दिनों में चर्चा करना चाहती थी, पर उन खुशी के दिनों में इस बात के लिए कोई अच्छा प्रसंग ही नहीं मिला। आज हमारी शिक्षा इतनी दूषित हो गई है कि उस में धार्मिक कर्तव्यों का कोई स्थान ही नहीं रहा। संध्या, हवन या अन्य धार्मिक कर्तव्य जो किसी समय परिवार के लिए आवश्यक समझे जाते थे, आज उन्हें देखने के लिए हज़ारों घरों की तलाश करनी पड़ेगी, तब जाकर कहीं शायद एक आध घर

में कोई धार्मिक क्रिया-कलाप दृष्टिगोचर हो। धार्मिक नित्य-कृत्यों से पुण्य होगा या नहीं, मैं आज इस चर्चा में नहीं जाना चाहती, मैं तो यह कहने जा रही थी कि इन धार्मिक कृत्यों का पारिवारिक जीवन की शान्ति सुख में एक विशेष स्थान है। आजकल हमारा समस्त जीवन घर-गृहस्थी और आजीविका के कार्यों में बीत जाता है। प्रतिक्षण सांसारिक बातों में लगे रहने से जीवन के अन्दर कहीं शान्ति नहीं आती। धार्मिक कृत्य करते समय हम थोड़ी देर के लिए सांसारिक राग-द्वेष और लोभ-मोह के वातावरण से अपने को अलग कर लेते हैं और यही समय है, जब कि घर के सब सदस्य मिल कर धार्मिक कृत्य करते हुए अपने जीवन में शान्ति-लाभ कर सकते हैं। यदि मिलकर धार्मिक कृत्य करना हमारा नियम बन जाय तो उस समय हमारे पारस्परिक संबंध में कुछ न कुछ ऊँची अध्यात्मिक भावना का थोड़ा बहुत प्रवेश अवश्य हो। यदि कभी परस्पर थोड़े-बहुत मतभेद पैदा भी हो जावें, तो वे शान्ति के इस क्षण में उठकर दूर हो जाते हैं, वस्तुतः सांसारिक राग-द्वेष से दूर का वातावरण बना कर हम कुछ धर्म की, कुछ परहित की, कुछ देश या समाज के हित की बात सोच सकते हैं। पर इसके लिए यह जरूरी है कि पति और पत्नी मिलकर कोई धार्मिक कृत्य करें। मेरा उद्देश्य धार्मिक कृत्य से केवल संध्या-हवन से नहीं हैं। कोई भी ऐसा कार्य जिस का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ न हो, और जिस

में कुछ पवित्रता और कर्तव्य-पालन की भावना निहित हो,

धार्मिक कर्तव्य

इसी के साथ यदि सांसारिक आनन्द—जो आज विवाह का एक मात्र उद्देश्य माना जाता है—के बारे में दो शब्द कहूँ तो तुम उसे बुरा न मानोगी। यौवन की उद्दाम वासना और पति-पत्नी का परस्पर आकर्षण शुरू शुरू में दोनों को यह नया मधुर आनन्द मनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक कर देते हैं। यह स्वाभाविक है, इस में कोई दोष नहीं। लेकिन इसी के साथ मैं तुम्हें यह अवश्य कहना चाहती हूँ कि इस दिशा में भी संयम न रखने का बहुत भीषण परिणाम होता है। शारीरिक मिलन ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। इस गंभीर चर्चा में मैं न भी जाऊँ लेकिन यह तो तुम आसानी से समझ जाओगी कि इस दिशा में किया गया असंयम स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर होता है। जब शरीर पर विवेक का नियंत्रण न हो, तब स्वास्थ्य-हानि का खतरा होता है। यौवन के नशे में हम इस को अनुभव नहीं करते; हमें इसका अनुभव तब होता है, जब हमारी जवानी जल्दी ही गलने लगती है, दिल बूढ़ा हो जाता है और उत्साह, साहस तथा स्फूर्ति शरीर व मन से चले जाते हैं, मुख पर कान्ति व ओज का अभाव हो जाता है और आँखें निस्तेज हो जाती हैं। इसलिए जहाँ मैं किसी पहले पत्र में पति के आगे आत्मसमर्पण की सलाह दे चुकी हूँ, वहाँ यह भी कहना चाहती हूँ कि इस संबंध में किया गया

संयम जीवन में बहुत लाभकर सिद्ध होगा। फिर एक ही कार्य बार बार करने में बहुत रस भी नहीं रहता। आशा है, इस संबंध में इतने लिखे को ही पर्याप्त समझोगी।

शुभाकांक्षिणी

शारदा

पति के मित्र

प्रिय इन्दुरानी,

पिछले दो पत्रों में मैंने विवाहित जीवन की सफलता के बारे में कुछ सुझाव रखे थे। आज उसी सिलसिले में एक और प्रश्न पर विचार करना चाहती हूँ।

पति के मित्र और परिचित समय-समय पर घर आते रहते हैं। इनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके संबंध मे नव विवाहित स्त्री कुछ अनजान और कुछ किंकर्तव्य विमूढ़ सी रहती है। परन्तु परिवार के सुख और शक्ति का इसके साथ विशेष संबंध है।

प्राचीन काल में स्त्री परदे में रहती थी, पति के मित्र घर में जाते भी नहीं थे, न वे स्त्री से बोलने की अपेक्षा रखते थे और न उन्हें इसकी इच्छा ही होती थी। स्त्री को उनके आगे निकलना भी नहीं पड़ता था। बस, उसका काम केवल

अतिथियों के लिए रोटी पका देना भर था। रसोई परोसने के लिए भी उसे उनके सामने नहीं आना पड़ता था। थालियाँ सीधी बैठक में पहुँच जाती थीं और इस तरह आज से एक सदी पहले स्त्रियों के सामने पति के मित्रों की समस्या ही नहीं थी। लेकिन अब समय बदल गया है। परदा नष्ट हो रहा है। शिक्षित घरों में तो परदा कभी का भाग चुका है। अब शिक्षित युवक यह चाहता है कि उसकी पत्नी मित्रों के सामने आवे, उनसे थोड़ी बहुत बात करे, उनको चाय या दूध अथवा भोजन परोसे। मित्र उसकी स्त्री के रूप-सौंदर्य को, उसकी व्यवहार-कुशलता की और सुघड़पन की प्रशंसा करें। वह मित्रों के सामने हँसमुख रहे और अपने व्यवहार से यह सिद्ध करदे कि उन दोनों का जीवन बहुत सुखी और आनन्दमय है। तुम्हारे जीजा जी ने परसों ही एक सम्पन्न धनपति के बारे में चर्चा की थी। दिल्ली में एक सेठ है, करोड़ पति हैं, उनकी उम्र होगी करीब ५०-५५। धन के साथ मान-प्रतिष्ठा सब कुछ है। उनकी एक पतिव्रता स्त्री हैं, संतान भी है। पर उनके जीवन में एक ही कष्ट है कि स्त्री अशिक्षित है और शायद कुछ कुरूप भी है। पहले उनकी स्थिति अत्यन्त साधारण थी, २०-२५ रु० मासिक कमाते थे, उस समय उनके परिचय का क्षेत्र बहुत संकुचित था। इसलिए कभी उन्होंने यह चिन्ता न की थी कि उनकी स्त्री अशिक्षित है, कुरूप है। इस दिशा में उनकी कोई महत्त्वाकांक्षा भी न थी.

और शायद सामर्थ भी न थी। लेकिन परमात्मा की उन पर अपार कृपा हुई। देखते देखते उत्तर भारत के अत्यन्त सम्पन्न लोगों में उनकी गणना होने लगी। धन आया और छप्पर फाड़कर आया। आज उनके पास कई मिलें हैं, व्यापार की कोठियाँ हैं, बैंक हैं, बीमा कंपनियाँ हैं। इन सब के साथ साथ उनका परिचय का क्षेत्र भी अत्यन्त विशाल हो गया है। न जाने कितने प्रतिष्ठित सुशिक्षित और अपटूडेट आदमियों से उनका वास्ता पड़ता है। उनके यहाँ पार्टियाँ होती हैं, दावतें होती हैं, सैंकड़ों हज़ारों आदमी उनके यहाँ आते हैं, पर सेठजी जब देखते हैं कि उनके बहुत से प्रतिष्ठित अतिथि अपनी अपनी सुशिक्षित सुसज्जित पत्नियों के साथ वहाँ आते हैं, तब वे भी चाहते हैं कि उनके बगल में भी उनकी जीवन-संगिनी हो, जो आतिथ्य में उनका हाथ बटा सके, जो थोड़ा-बहुत स्मित हास्य करके उनके पारिवारिक जीवन की मधुरता उनके सामने प्रकट कर सके और जो अतिथियों-की पत्नियों के सामने शिक्षा, रूप, संस्कृति और व्यवहार-कुशलता की प्रतिस्पर्धा में ठहर सके। उनकी यह इच्छा इतनी बलवती हो उठती है कि वे विकल हो जाते हैं। उन्हें अपनी पत्नी से आशा नहीं कि वह इस जीवन में नये संस्कारों को स्वीकार कर सकेगी। इसकी उन्होंने प्रारंभ से चिन्ता की होती, अपनी उन्नति के साथ साथ उसे भी शिक्षित और नवीन संस्कृति से परिचित किया होता, तो शायद वह

उनकी आज की आवश्यकता को पूर्ण कर देती। लेकिन वह तो अर्थोपार्जन में लगे रहे। अब यह अभाव उन्हें इतना खटकता है कि वे एक नये ढंग की अपटूडेट युवती से विवाह करने पर उतारू हैं, जो इस प्रकार के पारिवारिक, सामाजिक या सार्वजनिक जीवन में उनकी सहचरी हो सके। वह जानते हैं कि उनकी प्रतिव्रता स्त्री मौजूद है। वह अपनी वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से भी अपरिचित नहीं हैं, नीति और धर्म की चर्चा से भी वह कोरे नहीं हैं, पर यह अभाव उन्हें शूल सा खटकता है और इसके लिए बार बार अपने दिल को समझाने के बावजूद वह इस इच्छा का दमन नहीं कर सके और विवाह के लिए लाखों रुपया खर्च करने को तैयार हैं। आज कल के जमाने में यह इच्छा स्वाभाविक और उत्कट है।

पर दूसरी ओर इसके विपरीत भी उदाहरण मिलते हैं। पत्नी समझदार है, अपटूडेट है, पति के मित्रों के आने पर घर में चिक की ओट में नहीं बैठी रहती, सामने आती है, उन्हें चाय 'सर्व' करती है, और उन से हँसकर बातें भी करती है। पति के जो मित्र जितने घनिष्ट होते हैं, जितनी ज्यादा बार घर आते हैं, उतनी ही वह उन से ज्यादा बोलती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि पतिदेव के घर में न होने पर भी उन्हें निकाल नहीं देती। स्वयं पति देव ही इसके लिए स्त्री को प्रेरित करते हैं। कुछ दिनों तक इसी तरह रहता है, पर

फिर पतिदेव मन ही मन कई शंकाएँ करने लगते हैं। शनैः शनैः उन के हृदय का संदेह बढ़ता जाता है और फिर तो वह न उन मित्र का घर में आना पसंद करते हैं और न अपनी पत्नी पर ही विश्वास करते हैं, जब कि न उनके मित्र का कोई दोष होता है और न उनकी पत्नी के हृदय में कोई पाप होता है। लेकिन पतिदेव का हृदय ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध की ज्वाला से जलता रहता है।

हमारे एक नज़दीक के रिश्ते में एक भाई हैं। तुम भी तो उन्हें खूब जानती हो। उन्हीं का किस्सा लो। अपने विवाह के बाद उन्होंने बहुत प्रेम से अपने एक मित्र को बुलाया। वे प्रेमपूर्ण अनुरोध टाल न सके। भाग्य की बात कि उन मित्र महोदय से भाभी की भी जान-पहचान थी। बचपन से वे भाई-बहिन की तरह रहते थे। भाभी अपने भाई को देखकर खुश थी। हमारे भाई साहिब भी अपनी पत्नी को हँसती-खेलती देखकर प्रसन्न हुए। उनके मित्र १०—१५ दिन रहे। पर न जाने क्यों अचानक एक दिन हमारे भाई ने भोजन नहीं किया और अपने मित्र से भी बोलना बन्द कर दिया। जब उनकी पत्नी उनके मित्र से बोलती, तो दिल में कुढ़ते, बाहर कुछ न कहते। पर उनके हृदय में एक बार जो संदेह का कीट बैठ गया, वह बढ़ता ही गया। बाहर से वह उनके हँसी मज़ाक में शरीक होते थे, परन्तु दिल दिल में कुढ़ते थे। वह चाहते थे कि मित्र चले जावें, पर कह नहीं पाते थे। वह चाहते

थे कि उनकी पत्नी मित्र से बातें करना बन्द कर दे, लेकिन उसे अपने मन की दशा बता न सकते थे। बाहरी शिष्टाचार जो था। आखिर कुछ दिनों में वह मित्र गये, तब जाकर वह प्रसन्न हुए। आज तक भी उन्होंने अपने मनका संदेह अपनी पत्नी से नहीं कहा। उनके मित्र कई बार पत्र लिखते हैं, पत्र उनकी पत्नी के नाम भी आते हैं। पति स्वयं उन्हें पत्र लाकर देते हैं लेकिन दिल ही में वह कुढ़ते रहते हैं। पत्नी का दोष इतना ही है कि वह उनके सामने पर्दा नहीं करती, उनसे हँसकर बोलती है। इस में भी उसका दोष नहीं है। पति देव स्वयं ही पत्नी को यह सलाह देते थे कि मेरे मित्रों के सामने तुम क्यों नहीं आतीं, वे तुम्हें खा थोड़े ही जावेंगे। वे क्या समझेंगे कि मेरी पत्नी बिलकुल पुराने बिचारों की फूहड़ है।

बात यह है कि पुरुष का हृदय बहुत संदेह-शील है। इस के साथ उसमें अहंकार भी होता है। वह सदा यह चाहता है कि उसकी पत्नी सदा उसकी—उसी की बनकर रहे। वह उसके मित्रों के सामने आये तो भी उसी की घर-गृहस्थी के सुख का विज्ञापन करती हुई, यह प्रकट करती हुई कि मैं अपने पति का माल हूँ। स्त्री के अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को पति सहन नहीं कर सकता। वह यह चाहता है कि मेरी पत्नी मेरे मित्रों के सामने मेरी पत्नी के रूप में ही मिले। इस से अधिक वह अपने मित्रों का अपनी स्त्री के साथ संपर्क नहीं सह सकता।

पुरुष की इस दोहरी—उस लखपति सेठ की और हमारे

भाई की—मनोवृत्ति के कारण ही आज की युवती नारी के सामने यह समस्या विकट रूप में आती है। इस संबंध में वस्तुतः मध्यम मार्ग ही अपनाना चाहिए। प्राचीन काल में परदा नहीं था और पत्नी सच्चे अर्थों में पति के जीवन की सहचारिणी होती थी। सार्वजनिक रूप से किये गये यज्ञों में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। सीता के अभाव में उसकी प्रतिमूर्ति गढ़नी पड़ी, इसके सिवा कोई चारा भी न था। तो आज का युवक पति यदि यह चाहता है कि उसकी पत्नी उसके सामाजिक जीवन में, अतिथियों की सेवा में साथ रहे तो वह कोई अनहोनी चीज़ नहीं चाहता। यह उसकी स्वाभाविक इच्छा है, आज के युग में यह कुछ आवश्यक सा हो गया है। इसलिए मेरी सम्मति में पति के मित्रों के सामने आना और उनसे काम की बात कर लेना बुरा नहीं है। बहुत अधिक घनिष्ठता होने पर विभिन्न विषयों की चर्चा भी करना मैं बुरा नहीं समझती। पति के मित्रों से भाई की तरह व्यवहार करना चाहिए। यह भाव मेरे हृदय में है, लेकिन आजकल के दूषित वातावरण में 'भाई-बहिन' के पवित्र शब्द भी बदनाम हो चुके हैं, इसलिए मैं इन शब्दों का बार बार प्रयोग करते हुए डरती हूँ कि आज 'बहिन जी' या 'भाई जी' शब्दों में पवित्रता की वह शक्ति नहीं है कि मैं इनके द्वारा अपने भाव प्रकट कर सकूँ। इस संबंध में कोई निश्चित मर्यादा की रेखा खींचना कठिन है। समझदार पत्नी को सिर्फ़ दो बातों का ख़याल रखना

चाहिए। पहली और सबसे आवश्यक बात यह है कि सतीत्व और अपने धर्म की रक्षा। किसी भी व्यक्ति से वहीं तक अपना संबंध बढ़ाना चाहिए जहाँ तक अपने धर्म और सतीत्व को किसी तरह का हलका सा भी आघात लगने की संभावना न हो, संसार का समस्त वातावरण दूषित है, मन बहुत चंचल, इसलिए सदा इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि कहीं हमारा मन चंचल न हो जाय। बहुत दफ़ा ऐसा होता है कि अपना मन शुद्ध है, उसमें किसी तरह का कलुषित विचार या उसकी छाया तक भी नहीं है। किन्तु पति के परिचित मित्र इतने ऊँचे अपने को नहीं रख सके, उनका हृदय विचलित हो गया है और ज्यों ज्यों कोई स्त्री ज्यादा खुल कर—निर्दोष भाव से बातचीत करती जाती है, उनके हृदय की कलुषता बढ़ती जाती है। इस संसार में ऐसी कितनी ही घटनाएँ प्रायः प्रतिदिन होती रहती हैं कि मित्र की मित्रता या भोले मन से फ़ायदा उठाकर कोई चंचल हृदय व्यक्ति आते हैं; स्त्री सोचती है, पति के मित्र हैं, सत्कार करती है, दो बातें हँसकर करती है, मित्र के हृदय में कोई पाप-विचार घर कर लेता है। फिर वह समय असमय पति की उपस्थिति या अनुपस्थिति में घर आने लगता है, स्त्री को उसका आना अवाञ्छनीय लगता है, पर पति की मित्रता की भावना उसे स्पष्ट कहने से रोकती है। वह सज्जन आकर घर के बाल-बच्चों को प्यार करने लगते हैं। स्त्री में उनके विरोध करने की भावना नष्ट सी होती जाती है और मित्र का

साहस बढ़ता जाता है ।

मैं एक अपनी पड़ोसिन को जानती हूँ । उसके पति विद्वान् हैं, भोले हैं, संसार के छल-कपट नहीं जानते । उनका एक मित्र उनके घर समय समय पर आने लगा । वह दुराचारी था, यह मैं नहीं कहना चाहती । वह भी एक औसत दर्जे का साधारण चरित्र का मनुष्य था । आने जाने से हेल-मेल बढ़ता गया । एक दिन पति घर पर न थे । वही मित्र आ गये । मेरी पड़ोसिन का हृदय स्वच्छ था । बच्चों को स्नान करा रही थीं । कपड़े लेने अन्दर कमरे में गई और पति के उन मित्र को बच्चे की देख-भाल के लिए कह गई । कपड़े ट्रंक से निकालकर वह कमरे से बाहर निकलने लगी कि उन मित्र को कमरे में आते देखकर चकित रह गई । वह आश्चर्य क्रोध में बदल गया, जब उन मित्र ने उनसे प्रेम की प्रार्थना कर दी । मेरी पड़ोसिन ने झट अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया और उसे एक चपत रसीद करदी । बोली—उनके भोले-पन का यह परिणाम । वह बेचारा सती के इस महत्त्व का परिचय पाकर चला गया । आज भी वह उनके घर आता है, पर बहुत कम । उस पड़ोसिन ने उसके बहुत अनुनय विनय करने पर उसकी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर ली कि अपने पति को मित्र की यह करतूत नहीं बताई ।

यह एक पड़ोसिन का किस्सा है । लेकिन बहुत दफा स्त्री भी कुछ परिस्थितियों के वश में और कुछ अपनी स्वाभाविक

दुर्बलता से इतना विरोध नहीं कर सकती। दलदल में हाथ मलिन करने के बजाय यह कहीं अधिक अच्छा है कि उसका स्पर्श भी न किया जाय। इसीलिए इस संबंध में प्रत्येक स्त्री को एक मर्यादा अवश्य बाँध लेनी चाहिए। पति के मित्रों के साथ व्यवहार करते समय पति के स्वभाव और रुचि को भी जान लेना चाहिए। वे किस मित्र से कहाँ तक व्यवहार या सम्पर्क पसन्द करते हैं? किस व्यक्ति को वे अधिक पसन्द करते हैं और किस को नहीं। साधारणतः मैं यह कहना चाहती हूँ कि पति की उपस्थिति में उनके मित्रों का स्वागत करना, निर्दोष बातचीत करना, अच्छा है। अशिष्ट बातचीत में शामिल नहीं होना चाहिए। उनके सामने जोर से हँसना नहीं चाहिए, कपड़े ठीक तरह से रहने चाहिए, आधे कपड़े पहने कभी सामने नहीं आना चाहिए। पति की अनुपस्थिति में पानी आदि पूछ कर या तो फिर आने के लिए कह देना चाहिए अथवा कमरे में अखबार या किताब आदि रखकर स्वयं किसी दूसरे कमरे में चले जाना चाहिए। पति की अनुपस्थिति में उनके किसी मित्र के साथ घूमने या सिनेमा देखने नहीं जाना चाहिए। पति के साथ भी यदि उनके मित्र हों, तो भी सिनेमा आदि कम ही जाना चाहिए बशर्ते कि मित्र की पत्नी साथ न हो। इस तरह की चर्चा आज की स्वतंत्रता की इच्छुक नारी को एक बंधन मालूम होगी, परन्तु मैं यह समझती हूँ कि इसी बंधन में आज उसका हित

है—मानव-समाज का हित है और सब से बढ़कर परिवार की शान्ति है।

आजकल की अनेक शिक्षित युवतियों की तरह मैं भी कभी सोचती हूँ कि हम पुरुषों की इच्छाओं का क्यों इतना आदर करें कि अपना व्यक्तित्व खो दें? यदि पुरुष आदर्श नहीं हैं, यदि उसमें अहंकार या अहंभाव है तो क्यों प्रति क्षण हम उसकी इच्छा या अनिच्छा का ख़याल रखें? बात सचमुच तर्क-सम्मत मालूम होती है। लेकिन इस तरह के तर्क से संसार की समस्या हल तो नहीं हो सकती। हमें पुरुष समाज के साथ रहना है, यह मंगलमय भगवान्—और यदि कोई उन्हें स्वीकार नहीं करता तो मैं कहूँगी कि प्रकृति—का आदेश है। पुरुष समाज जैसा है, जैसे उसके गुण और अवगुण हैं, उन समेत पुरुष समाज के साथ अपने जीवन का समन्वय करना है। मैं थोड़ी देर के लिए मान लेती हूँ कि आज का पुरुष उच्च धरातल पर नहीं रहता, वह चार सीढ़ियाँ नीचे है, तो भी उसे उठाने के लिए, साहस देने के लिए स्वयं भी एक सीढ़ी नीचे उतरना ही होगा। त्रुटिपूर्ण, गर्वित, घमण्डी आदि जो भी विशेषण आज की पढ़ी-लिखी अपटूडेट फ़ैशनेबल युवती पुरुष के विरुद्ध लगाती है, उसे स्वीकार भी कर लिया जाय, तो भी आख़िर ऐसे पुरुष के साथ जीवन निबाहना है, तो हम भी और उद्धत होकर, गर्वित होकर उसे नम्र या विनयशील नहीं बना सकतीं, आत्मसमर्पण द्वारा ही उस पर विजय पा सकती

हैं, और कम से कम उस संघर्ष को रोक सकती हैं, जिसने आज यूरोपियन समाज के संगठन को अन्दर ही अन्दर विशृंखल कर दिया है।

वेद का आदर्श इस संबंध में बहुत ऊँचा है। वह तो जहाँ स्त्री के कर्तव्य बतलाता है, वहाँ तुम को भी उन आदर्शों पर अमल करने के लिए कहता है। विवाह संस्कार में वर और वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि वे दोनों एक दूसरे के हृदय और आत्मा को धारण करेंगे—आदर करेंगे और एक दूसरे के अनुरूप अपने चित्त को बनावेंगे। एक दूसरे की वाणी का पालिन करेंगे। पुरुष यदि कर्तव्य पालन नहीं करता, तो स्त्री क्यों छोड़ दे? ऋषि दयानंद ने एक रियासत में भाषण देते हुए कहा था कि आज कोई कोई राजा इतने चरित्र-भ्रष्ट और पतित हैं कि यदि उनकी पत्नियों का तपोबल और चरित्र उनकी रक्षा न कर रहा होता, तो वे न जाने कब के नष्ट हो गये होते। हमें तो अपने कर्तव्य का पालन करना है, पुरुष अपने कर्तव्य का पालन करे, तो अच्छा है।

पत्र कुछ लम्बा हो गया है। सिर्फ महाभारत का एक उद्धरण देकर पत्र समाप्त करती हूँ। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा कि तुम राज्य का अपहरण हो जाने पर भी सुखी कैसे रहती हो? द्रौपदी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि सुख से सुख की प्राप्ति संभव नहीं है। यदि सुख प्राप्त करना है, तो

जीवन को तपोमय और कर्ममय बना लो। द्रौपदी ने बताया कि हम सब माता कुंती के आदेश का सदैव घर और वन में पालन करते हैं। एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य में कभी प्रमाद नहीं करते। वन की बात ही क्या, राज्य में रहकर भी सुखोपयोग की समस्त सामग्री पाकर भी मैंने अपना जीवन सादा ही रखा। अन्तःपुर के सेवकों से लेकर कोच-वान और ग्वालों तक के काम की देख-भाल मैं स्वयं ही करती रही हूँ। महाराज युधिष्ठिर का अपार समुद्र के समान बहुत बड़ा कोश था। उसके आय-व्यय को मैं ही तो सँभालती रही हूँ। मैं निरालस रह कर अब भी पाण्डवों की आज्ञा की प्रतीक्षा करती रहती हूँ। जो आचरण उन्हें अप्रिय है, उससे मैं दूर रहती हूँ।

तुमने वह उपदेश अवश्य पढ़ा होगा, जो महर्षि कण्व के मुख से कविवर कालिदास ने शकुन्तला को दिलाया है उस पर यदि आचरण करोगी, तो परिवार में कभी कष्ट का नाम न होगा और यदि कभी आयगा भी, तो उसे तुम आसानी से झेल सकोगी। वह उपदेश निम्न लिखित है—:अपने बड़ों की सेवा करना, सपत्नी के साथ मित्र का सा प्रेमपूर्ण व्यवहार करना, यदि पति कोई बुरा बर्ताव भी करें तो गुस्से से उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करना। अपने आश्रितों पर नम्र रहना और अपने सौभाग्य पर गर्व न करना। इस प्रकार स्त्रियाँ गृहिणी की मर्यादा प्राप्त करती हैं।

और क्या लिखूँ। उनके दफ़्तर से आने का समय हो गया है और तुम्हें पत्र लिखते लिखते में भूल गई कि रसोई भी बनानी है, सो, बस करती हूँ। तुम्हारे दर्शन की अत्यन्त उत्सुकता है, देखें मंगलमय भगवान् यह इच्छा कब पूर्ण करते हैं ?

शुभाकांक्षिणी

शारदा

पति की रुचि पहचानो

प्रिय इन्दु रानी,

कल मैं 'माधुरी' पत्रिका देख रही थी कि उसमें तुम्हारी कविता देखी और उसके दूसरे पृष्ठ पर बहनोई जी की कविता। पढ़कर हृदय प्रसन्न हो गया। दोनों की साहित्यिक रुचि है। उनकी रुचि को तुमने पहचान लिया है। मंगलमय भगवान् करे कि तुम दोनों साहित्यिक क्षेत्र में नाम कमाओ।

आजकल साधारण गृहस्थों के दुःखमय होने का एक प्रधान कारण यह भी होता है कि पति और पत्नी की रुचि एक समान नहीं होती। पति पढ़े-लिखे होते हैं, साहित्य या राज-नीति में रुचि रखते हैं। प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक आकांक्षा रहती है कि वे जिन विषयों में रुचि रखते हैं, उन पर अपने मित्रों में चर्चा करें। वे घर आते हैं, बड़ी उमंग से कोई अखबार का समाचार पत्नी को सुनाते हैं, किसी नेता का

भाषण या असेम्बली में प्रस्तुत प्रश्न अथवा किसी साहित्यिक समस्या की चर्चा घर में करते हैं। किन्तु उनकी पत्नी या जीवन-संगिनी उस चर्चा में कोई रस नही लेती—वह अपनी घर-गृहस्थी, चूल्हा-चक्की या बाल-बच्चों के पोषण में लगी रहती है। पतिदेवता जितनी उमंग के साथ चर्चा शुरू करते हैं, उतनी ही निराशा के साथ वापस चले जाते हैं। पत्नी यदि कभी कोई बात भी करती है तो उसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता है। घर-गृहस्थी के झंझट, बाल-बच्चों की चिन्ता अथवा अड़ोस-पड़ोस और कुटुम्बियों की आलोचना इन विषयों में पति कुछ दूर तक ही दिलचस्पी लेता है। वह इन बातों में उलझना नही चाहता। वह दूसरे संबंधियों की अपने माता-पिता की (आजकल की युवती अपनी सास-ससुर को पसन्द नहीं करती) आलोचना एक सीमा तक ही सहन करता है। किसी दूसरे के झगड़ों में भी यदि वह स्त्री से चर्चा करता है तो बहुधा वह स्त्री के प्रति शिष्टाचार का ही पालन करता है। उसकी इच्छा होती है कि वह संसार के प्रश्नों की चर्चा करे। लेकिन स्त्री को या तो उस विषय का ज्ञान नही होता अथवा उसके संस्कार इतने पिछड़े हुए होते हैं कि वह उसमें रस नहीं लेती। इसमें चाहे अशिक्षा का दोष हो, या वर्तमान घरेलू वातावरण का, परिणाम यह होता है कि पति इन विषयों की चर्चा करने के लिए अपने मित्रों के पास जाता है, वहीं वह अपने इस अभाव की पूर्ति करता है। वहाँ उसे अभीष्ट वस्तु

प्राप्त होती है, उसका मनोरंजन होता है।

यही कारण है कि विवाह के बाद के एक दो वर्ष पति घर में अधिक आता है। पर पीछे उसका दफ़्तर से खाली समय का एक बड़ा भाग घर से बाहर मित्रों में व्यतीत होता है, इधर स्त्री अकेली होती है। उसे पति से बातें करने को समय प्राप्त नहीं होता, वह अपनी आवश्यकताएँ भी नहीं कह पाती। तब उसे इस बात का विवेक भी नहीं रहता कि कब कौन सी बात कहनी चाहिए। पतिदेवता दफ़्तर से अथवा दूकान से बाहरी झंझटों से थके-माँदे घर आराम करने आते हैं, पर वहाँ उनका स्वागत करने के लिए मुस्कराती हुई दिल की रानी का दर्शन नहीं होता, वहाँ होता है सदा अभावों की पिटारी लिये शिकायतें करते हुए लड़ने-झगड़ने पर उद्यत एक क्रुद्ध चेहरा।

मैं पिछले दिनों एक शहर में गई थी। वहाँ प्राचीन संस्कृत साहित्य के एक महान पण्डित रहते हैं। उनकी विद्वत्ता का सिक्का बैठा हुआ है। मुझे उन्हीं के घर चार पाँच दिन रहना पड़ा। पण्डित जी की पत्नी घर के काम काज में चतुर थीं। यों देखने-भालने में असंस्कृत भी नहीं मालूम होती थीं, परन्तु मुझे चार दिन रहकर ही यह मालूम हो गया कि दोनों का जीवन सुखी नहीं है, कम से कम पण्डित जी संतुष्ट नहीं हैं। पण्डित जी अपने काम-काज करके जब घर आते थे, तभी उनकी पत्नी को यह कहते मैं सुनती कि अमुक सब्ज़ी तो

लाये ही नहीं, घर में कल से चने की दाल नहीं है, या बच्चे का कोट दर्जी से नहीं लाये अथवा धोबी के पास तो आप गये नहीं होंगे। यद्यपि हमारी उपस्थिति के कारण वह अत्यन्त संकोच से कहती थीं और पण्डित जी भी इन बातों को टालते से प्रतीत होते थे, तथापि हम दोनों की आँखों से यह छिपा न रहा कि उनकी पत्नी अपने क्रोध को छिपाने का प्रयत्न कर रही हैं और पण्डित जी का शरीर व दिमाग़ अत्यन्त थके हुए हैं, इस समय उनकी बड़ी इच्छा है कि कोई उन्हें पानी दे, हाथ-मुँह धुलाए तथा गरम गरम दूध या मेवा आदि दे। लेकिन घर में पैर रखते ही यह अभावों और अभियोगों की पिटारी खुली देखकर उन्हें जीवन नीरस प्रतीत होने लगता है। वह क्षुब्ध हो जाते हैं।

एक दिन पंडित जी शायद चार पाँच मील का सफ़र करके घर आये थे, उन्होंने नया जूता पहना हुआ था, इसलिए पैरों में शायद कुछ तकलीफ़ थी। जब वह आये तब मैं दूसरे कमरे में थी, उनकी पत्नी को मेरी उपस्थिति का ज्ञान न था। बड़े जोर से झपट कर बोलीं कि मेरा काँटा बनने गया था, सुनार सोना खा गया होगा, आप लाये ही नहीं, आज भी भूल गये होंगे। वह विद्वान् पति, जो शायद किसी समस्या के बारे में चिन्तन कर रहे होंगे, एक दम हतप्रभ से हो गये, उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा और घर में एक मिनट बैठने भी

न पाये कि उलटे पैरों वापस चले गये । अब पत्नी को अपनी भूल मालूम हुई । बोली—अब जाने की ज़रूरत क्या है ? फिर कभी जाना । पर वे नहीं ठहरे और चले गये । और रात को दस बजे सोने का काँटा लेकर आये । उस दिन उन्होंने स्वस्थ न रहने का बहाना बनाकर भोजन नहीं किया, पर असली कारण हम समझ गये थे । मैं यह नहीं कहना चाहती कि पण्डित जी की पत्नी पतिव्रता नहीं थीं । पर वह यह नहीं समझती थीं कि पति को प्रसन्न करने के लिए कौन सी बात कब कहनी चाहिए । वस्तुतः धर्म-चर्चा, और सामाजिक प्रश्नों के बारे में पंडित जी से वह किसी प्रकार की बातचीत भी नहीं करती थी । यह नहीं कि वह इस प्रकार की साधारण सी चर्चा कर भी नहीं सकती थी, परन्तु उन्होंने इस दिशा में कभी दिलचस्पी ही नही ली थी । पंडित जी को यह अभाव अपने मित्रों से बातचीत करके पूर्ण करना पड़ता और इसका परिणाम यह होता कि पत्नी को अपनी साधारण सी बातें करने के लिए उचित समय का विवेक नहीं रहता । इसलिए यह पहली चीज है कि अपने जीवन-संगी के साथ उसके प्रिय विषयों में पत्नी को भी रुचि लेनी चाहिए । इसके लिए विभिन्न विषयों की पुस्तकों का और खास कर अखबारों का

अध्ययन जरूर करना चाहिए। ये पुस्तकें तुम्हें जीवन में शान्ति व आनन्द देंगी।

अपने अभावों की चर्चा करने का प्रसंग आ गया। लेकिन इसकी चर्चा दूसरे पत्र में।

तुम्हारी बहन
शारदा

अपनी ज़रूरत कब और कैसे बताओ

प्रिय बहिन।

मैंने पिछले पत्र में लिखा था कि जब तब अपनी शिकायतों या अभावों की पिटारी पति के आगे नहीं खोलनी चाहिए। तब, आखिर पत्नी को अपनी ज़रूरतें कब बतानी चाहिए ?

सब से पहली बात यह है कि अपनी ज़रूरत की चर्चा कभी उलाहने के रूप में नहीं करनी चाहिए। तुम्हें एक चीज़ की ज़रूरत है। "यह चीज़ तो आप भूल ही गये होंगे, मेरी आप को चिन्ता भी क्यों हो ?" इस तरह अपनी ज़रूरत बताने के बजाय बड़ी शान्ति व प्रेम से कह दो—शायद आज तो आप को समय नहीं मिलेगा पर जब एक आध दिन में समय मिले अमुक अमुक वस्तुएँ लेते आइए। इनके बिना काम रुका हुआ है। पति के घर में आते समय के बजाय घर से बाहर जाते समय याद कराना अच्छा होता है। अगर वे कार्या-

धिक्य से भूल जाते हैं, तो उनकी डायरी में लिख दिया करो। यों ही दसियों बातें करते समय कभी याद करा दिया करो और अगर उनके पास कोई डायरी है, तो याददाश्त में स्वयं लिख दिया करो। संभव है कि वह अपने काम-काज में इतने व्यस्त रहे कि तुम्हारी चीज़ लाने का ख़याल नहीं रहा हो। पर तब भी उन्हें उलाहना नहीं देना और खास कर ऐसे समय जब कि वह बाहर से अभी थके-माँदे आये हों। इस से खीज पैदा हो जाती है और यदि कभी पति भी दो एक कठोर उत्तर दे दे, तो बात बढ़ जाती है और आपस में अनबन शुरू हो जाती है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि पत्नी किसी ऐसी चीज़ की चाहना करती है, जिस में कुछ खर्च होता हो और पति उसे टाल देना चाहते हों। ऐसी किसी चीज़ के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए और यदि कभी बात करनी ही हो तो यह देख लेना चाहिए कि वह अत्यन्त प्रसन्न है और तुम्हारी प्रार्थना को टाल नहीं देगा। बहुत बरस हुए मैंने पाकशास्त्र संबंधी कोई पुस्तक पढ़ी थी। दलिया बनाने की विधि लिखते हुए लेखिका ने लिखा था कि यह दलिया इतना स्वादिष्ट बनेगा कि आप पति को खिलाइये और ज़ेवर कपड़ा आदि कुछ भी माँग लीजिये, वह इन्कार नहीं कर सकेगा। मतलब यह है कि पति जब प्रसन्न हों, सुस्वादु भोजन कर रहे हों, सोने की तैयारी कर रहे हों अथवा तुम से हँस हँस कर बात

कर रहे हों तब विनयपूर्ण शब्दों में अपनी इच्छा प्रकट कर दो। यदि वह कभी इन्कार कर दें तो फिर बार बार आग्रह करना ठीक नहीं है और न मुँह फुला कर ही बैठ जाना चाहिए। आजकल अधिकांश अशिक्षित स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोकर काम चला लेती हैं। इनका प्रेमी पति इनके रोने को सहन नहीं कर सकता और वह कष्ट उठाकर भी चीज ला देता है। एक बार सफल होकर पत्नी रोने के अस्त्र का ही बार बार उपयोग करने लगती है। यह रामबाण समझा जाता है। कहा भी है "नारीणां रोदनं बलम्" परन्तु मैं चाहती हूँ कि रोकर पति से कोई बात मनवा लेना उसकी तुम्हारे प्रति कोमल भावनाओं का नाजायज़ फ़ायदा उठाना है। आज तुम इस के इस करुण भाव का नाजायज़ लाभ उठाती हो, कल कोई दूसरा भी उनकी इसी कमज़ोरी का लाभ उठाकर अपना हित-साधन कर लेगा। यह याद रखो कि जो पति किसी सिद्धान्त और कर्तव्य के लिए नहीं, वरण नारी का मुँह और आँसू देख कर अपने माता-पिता अथवा अन्य प्रिय जन को छोड़ सकता है, वह समय आने पर उस स्त्री की भी उपेक्षा करने में न चूकेगा। फिर सब से बड़ी बात यह है कि इससे जीवन में अशान्ति फैल जाती है, जो जीवन को नीरस बना देती है।

इसके विपरीत मैं समझती हूँ कि प्रसन्नवदनता, स्मित

और हास्य ज्यादा प्रभावकारी होता है, वस्तुतः घर का प्रसन्न वातावरण, जहाँ कि सदा हँसी का फव्वारा छूटता हो, गृहस्थी को सदा बलवान बनाता है। पुरुष दुनिया के युद्ध से थका और प्यासा घर में इस आशा के साथ आता है कि यहाँ प्रेम, हास्य और शान्ति का जो झरना बह रहा है, उसके शीतल जल में स्नान करने से सारी थकावट दूर हो जायगी। मैं एक सहेली को जानती हूँ। वह घर के काम-काज में होशियार थी। समझदार भी कम न थी, लेकिन फिर भी वह सदा उदास रहती। मालूम हुआ कि उसके पति भी हमेशा निराश व उदास रहते हैं। मुझे एक दिन कहने लगी कि क्या करूँ, जीवन से ऊब गई हूँ। जब वे आते हैं, सदा उदासी की बाता करते हैं, उनमें स्फूर्ति, उत्साह व प्रसन्नता कभी नही देखी कभी किसी बात में दिलचस्पी नही लेते, कभी उन्हें हँसते नहीं देखा। उसकी उम्र अभी ३० से अधिक नही थी, उसके पतिदेव भी अभी पैंतीसी पार नहीं कर पाये थे। सन्तान भी थी, आर्थिक स्थिति भी खराब न थी। १००-१२५ रु० प्रति मास वेतन था, पर फिर भी उदास रहते थे। मैंने कुछ गंभीर होकर उससे कहा कि एक काम करो—अपने पतिदेव के साथ एक घण्टा खूब जोर से हँसा करो। बात हो या न हो, एक घण्टा अवश्य तुम्हारी और तुम्हारे पतिदेव की उदासी को दूर कर देगा। वह कुछ संकुचित और अप्रतिभ होकर बोली—उनसे मैं हँसी करूँ? शायद उसके हृदय में पति के सामने

हँसना अविनय था। मैंने हँसी में जवाब दिया—उनके साथ नहीं हँसोगी तो किसी परपुरुष से हँसने का मौका कौन देगा? मैंने उसे समझाया और चली गई। यद्यपि उसने हामी नहीं भरी, तथापि मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह मेरी बात से कुछ प्रभावित अवश्य हुई है। दो तीन महीने बाद वह फिर मिली, मुझे उसने अब कोई शिकायत नहीं की, मालूम हुआ कि वे प्रति दिन अब परस्पर गपशप मारते हैं। वस्तुतः मनहूसियत, दिन भर मुँह फुलाये रहना, गृहस्थ जीवन की शान्ति के लिए बड़ा भारी जहर है। दुःख में, कष्ट में, कोई अप्रिय बात होने पर भी प्रफुल्लता या प्रसन्नवदनता को नहीं जाने देना। प्रसन्न चेहरा सौंदर्य की रक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन है और आभूषणों व गहनों से लदी रहने पर भी मनहूस चेहरा हृदय में सदा विरक्ति ही पैदा करता है। यह नियम सदा याद रखो कि जितना तुम अपने को प्रसन्न रखोगी, हँसते हँसते विपत्ति झेल लोगी, अपने स्वास्थ्य और सौंदर्य को उतना ही कायम रख सकोगी।

इन सब बातों को यदि संक्षेप से कहूँ तो कह सकती हूँ कि अपने पति की रुचि को पहचान लो और विविध पुस्तकों व अखबारों का अध्ययन करो। जब पतिदेव बाहर से आवें, तब आते ही कभी अभावों-शिकायतों की पिटारी मत खोलो। अपनी किसी भी माँग को पूरा कराने के लिए रोने के अस्त्र का प्रयोग मत करो। और सबसे बढ़कर अपने जीवन में प्रसन्नता, हास्य-वदनता और प्रफुल्लता का आश्रय लो। यही कार्यसिद्धि

का सबसे बड़ा अस्त्र है।

बहनोई को नमस्ते। अब तो तुम्हारा दिल घर में लग गया होगा। मेरे पास आने का कब प्रोग्राम बनाओगी ?

तुम्हारी बहिन

शारदा

सास, आख़िर क्या चाहती है?

प्रिय इन्दुरानी,

तुम्हारे दो एक पत्र आये। पिता जी का भी पत्र आया था। उनसे कुछ ऐसा मालूम हुआ कि तुम्हारे हृदय में कुछ दुःख है और तुम कभी कभी खिन्न रहती हो। पत्र पढ़कर बहुत दुःख हुआ। सोचा-विचारा कि मेरी प्यारी बहिन का इतना अच्छा स्वभाव है, उसे कौन दुख देगा। पर कोई कारण समझ नहीं आया। अन्त में तुम्हारे जीजाजी को मैंने पत्र दिखाया। उन्होंने मुझे बताया कि बहुत संभवतः सास के व्यवहार से तुम खिन्न रहती हो। तब तुम्हारे पत्र की यह पंक्ति समझ में आ गई—"आख़िर माता-पिता क्यों इतनी उमंग से अपनी संतान का विवाह करते हैं? क्या इसीलिए कि वे किसी नये प्राणी पर शासन करने के लिए उत्सुक होते हैं? क्या वे अपनी संतान की हँसी-खेल-कूद भी पसन्द

नहीं कर सकते ?"

यदि हमारा अनुमान ग़लत नहीं है, तो तुम्हारा यह प्रश्न बिलकुल ठीक है। वस्तुतः आज प्रायः प्रत्येक गृहस्थी में सास-बहू की समस्या विकट रूप से उपस्थित है। मैं स्वयं ऐसे बहुत से घरों को जानती हूँ कि सास-बहू के पारस्परिक झगड़े ने सुन्दर घर को नरक बना दिया है। एक पड़ोसी के घर मैं कभी कभी जाया करती हूँ। वहाँ एक वृद्ध स्त्री रहती हैं उम्र होगी करीब ४५ बरस। वह बहुत समझदार हैं, बोल-चाल बहुत अच्छी, रहन-सहन में कोई शिकायत नहीं। सब काम-काज अपने हाथों करती हैं। उसके पति हों या पुत्र सभी की वही चिन्ता करतीं। घर में सुख की वर्षा थी, लोग कहा करते थे कि घर क्या है, स्वर्ग है। पति की आमदनी काफ़ी थी, पुत्र भी अच्छे सम्मान के साथ बी० ए० पास कर चुका है। वह पहले विवाह के लिए तैयार न था, माँ के बहुत कहने-सुनने और अनुरोध करने पर ही तैयार हुआ था। पुत्र माँ का दुःख न देख सका, इसीलिए वह सहमत हो गया। बड़ा मातृ-भक्त था। माँ ने बड़ी साध के बाद उसका विवाह किया। लड़की की तलाश में ही दो साल लगा दिये, सच पूछो, तो जैसी सुशील और सुशिक्षित सास, वैसी ही बहू मिली। जब घर आई, तो सब पड़ोसिनों ने कहा कि लक्ष्मी आई है।

विवाह हो गया—कुछ दिन शादी की हलचलों में बीते,

दो एक महीने और बहू के बार बार घर आने-जाने में गुज़र गये। आखिर विवाह के तीन मास बाद बहू घर में कुछ अधिक समय तक रही। बहू पढ़ी-लिखी थी, चेहरे पर सदा मुस्कराहट, जब बोलती तो फूल झड़ते। सास ऐसी बहू को पाकर प्रसन्न थीं, ससुर सदा कुल-लक्ष्मी का लिहाज़ करते, पतिदेवता की तो बात ही न पूछिये, इस पर पूरी तरह लट्टू थे, इसका स्वभाव ही ऐसा था। सुशिक्षित, सुशील, सुन्दर-सोने जैसा दमकता चेहरा, होठों पर मुस्कराहट। दो महीने बीते। मैं एक दिन उनके घर गई, चूल्हा चौका खतम कर चुकी थी, सोचा था, एक दो घड़ी वहाँ गपशप में बिताऊँगी, पर वहाँ जाकर विचित्र दृश्य देखा। बहू का नाम था प्रभा, उसकी आँखों में आँसू थे, मुझे देखकर शायद आँसू पोंछ लिए। कृत्रिम हास्य का प्रयत्न करते हुए बोली—'आइये, बैठिये'। लेकिन अब भी उसका गला भरा हुआ था। मैं चकित रह गई। मैं आती हूँ कहकर अन्दर चली गई और वहाँ मैंने उसकी सास को देखा, उस का चेहरा भी मुझे प्रसन्न नहीं जान पड़ा। उसके चेहरे पर क्रोध के भाव स्पष्ट थे, त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। मुझे देखकर उसने भी अपने चेहरे पर कृत्रिम हास्य लाने की चेष्टा की और मुझे पास बैठने को कहा। मैं स्तब्ध थी। बहू के पास जाने की इच्छा होते हुए भी मैं वहाँ बैठ गई। इधर उधर की बातें होती रहीं। ऐसा स्पष्ट मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाहती है, पर बार बार अपनी इच्छा को दबा लेती है।

आखिर उस से रहा न गया। बोल ही उठी—मैं तो आज कल की शिक्षा को बिलकुल नापसन्द करती हूँ। यह भी क्या कि रोज़ स्त्री और पुरुष घूमने चले जाते हैं। कभी सिनेमा, कभी बाग और कभी जमना की सैर। इतना भी पति के साथ रहना मुझे तो कतई पसन्द नहीं है। न किसी की परवा है, न कोई संकोच, आखिर शुरू के कुछ साल तो पति से भी परदे का निभाव करना चाहिए। मैं चुपचाप सुनती रही। समझ लिया कि अभी इसी बात पर बहू से कुछ कहा-सुनी हो गई है। कुछ दिन बाद फिर मैं इस घर में गई। तब भी उसका रोष शान्त नहीं हुआ था, बढ़ ही गया था, बोली—आज देखा नया तमाशा—स्त्री व पुरुष एक स्थान पर बैठकर रोटी खा रहे हैं। ऐसी भी क्या बहू, जो पति के खाने तक प्रतीक्षा न करे। न कुछ लज्जा, न कुछ शर्म, धर्मकर्म की कोई बात नहीं। सवेरे उठकर न जमना जायगी, न जपतप करेगी, बस थोड़ा सा घर का काम और फिर पढ़ना-लिखना। पहले तो बहू कभी कभी हमारे घर आ भी जाती थी, पर अब उस के दर्शन न होते थे, पीछे से मालूम हुआ कि सास ने ही उसे रोक दिया था। मैं भी जब कभी वहाँ जाती तो सास उसे किसी न किसी बहाने दूसरे काम में लगा लेती थी। देखने से स्पष्ट प्रतीत होता था कि प्रभा के चेहरे पर न वह रौनक है, न वह लावण्य और न प्रसन्नता। वह अन्दर ही अन्दर घुली जा रही है। एक दिन की बात है कि सास कहीं बाहर गई थीं, मैं घर

आ पहुँची। बहू से बातें होने लगीं, मैंने पूछा—"आखिर क्या बात है कि तुम बड़ी उदास रहती हो। चेहरा कुम्हला सा गया है।" उसकी आँखों में आँसू भर आये। बोली—"बहिन जी, ये बातें पूछकर क्या करेंगी।" बहुत कहने-सुनने पर रोते हुए बोली—"कुछ समझ में नहीं आता। यही सोचती हूँ माता-पिता मेरा विवाह ही न करते तो अच्छा था।" "क्यों, क्या पतिदेव कुछ कहते सुनते हैं।" मैंने अनजान बन कर पूछा। "नहीं, उनसे तो कोई शिकायत नहीं, वह मुझे जो प्रेम करते हैं, वह बहुत कम को नसीब होता होगा, लेकिन जो कुछ वह चाहते हैं, माँ नहीं चाहतीं। मुझे समझ नहीं आता, क्या करूँ। वह कहते हैं कि प्रति दिन सायंकाल घूमने चला करो; माँ इसे पसन्द नहीं करती। वह चाहते हैं कि मैं अपना अध्ययन जारी रखूँ और माँ मेरे हाथ में पुस्तक देख कर नाराज़ होने लगती हैं। वह कहते हैं कि मैं उनके साथ भोजन करूँ, परदा न करूँ और माँ पुराने ख़याल की हैं, इसे बुरा समझती हैं। इसी तरह बात बात पर उनके और माँ के विचार नहीं मिलते। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। जिसकी बात न मानो, वही नाराज़ होता है। इसी-लिए सोचती हूँ कि माता-पिता मेरा विवाह ही न करते तो अच्छा था। माँ सख़्त-सुस्त कहने लगती हैं, तो मैं चुप हो जाती हूँ। एक दिन बोलीं—"तूने मेरे पुत्र को भी बेशरम कर दिया, तू इस घर को नष्ट कर देगी। मैं सह न सकी,

और बोल ही बैठी—तो मैं स्वयं तो इस घर में आई न थी। बस, झाड़ू लेकर मुझ पर बरस पड़ी।" यह कह कर वह रोने लगी। मैंने उसे बहुत ढाढस दिया, पर वह चुप नहीं हुई। आखिर बाहर से सास की गरज सुनकर आंसू पोंछ कर चुप-चाप दरवाज़ा खोल दिया।

यह एक लम्बा उदाहरण मैंने इस लिए दिया है कि अधि-कांश घरों में ऐसे झगड़े चलते हैं। सास और बहू का संघर्ष इतना अधिक व्यापक और प्रसिद्ध है कि लोग इस पर कभी कोई आश्चर्य ही नहीं करते। किसी घर में सास-बहू परस्पर प्रसन्न हों, यही आश्चर्य की वस्तु मानी जाती है। मैं पिछले दिनों एक पुस्तक पढ़ रही थी उसमें गृहस्थ जीवन की सफलता के दस उपाय बताये गये थे और उपाय जानकर आश्चर्य करोगी कि उनमें एक उपाय यह भी लिखा था कि—सास का होना तो अच्छा है, परन्तु उसका साथ रहना ठीक नहीं है। सास तो बहू को प्रसव आदि के समय केवल सहायता देने भर के लिए है। ऐसा कहते समय यह स्वयंसिद्ध सत्य मान लिया गया है कि सास और बहू परस्पर निभा ही नहीं सकतीं।

यह एक सचमुच आश्चर्यकारक बात है। न सास में अपने आप कोई दुर्गुण होता है और न बहू में कोई दोष पाते हैं। लेकिन न सास सास के नाते और न बहू बहू के नाते किसी तरह आदर्श मिलती है। दोनों का अपनी पड़ोसियों से—अपनी सहेलियों से—अच्छा व्यवहार होता है। वे दुःखी पर दया

करतीं हैं। दीनों को दान देती हैं, घर घर उनकी उदारता और मधुर भाषण की प्रशंसा होती है, लेकिन सास की वह उदारता, वह मधुर भाषण और वह हँसी बहू के लिए नहीं होती और न बहू के ये गुण सास के लिये प्रकट होते हैं। दोनों एक दूसरे की प्रसन्नता या हँसी सहन नहीं कर सकते। आखिर इस का कारण क्या है ? क्यों बहुत सी बहुएँ अपनी सासों के अत्याचार न सह सकने के कारण मिट्टी का तेल छिड़क कर बलिदान दे देती हैं ? क्यों बहुत सी बहुएँ सासों के वाग्बाणों से आहत होकर कुएँ या नदी में गिर कर आत्म-हत्या कर लेती हैं अथवा सदा के लिए घर छोड़ कर चली जाती हैं और कोठों पर जाकर पापाचार द्वारा अपना पेट भरने के लिए विवश होती हैं ? आखिर सास ही तो होती है, जो बहू का मुँह देखने के लिए सदा लालायित रहती है, वह अपने पुत्र को प्राणों से अधिक चाहती है, पर क्यों कुछ दिनों बाद उसे अपने पुत्र की प्राणप्रिय स्त्री फूटी आँखों नहीं सुहाती और यदि पुत्र अपनी स्त्री का भक्त है। तो उसे भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखती।

सच तो यह है कि इस में न केवल सास का दोष है और न बहू का। यह तो एक स्वाभाविक मनोविज्ञान का सत्य है। विवाह से पहले माता पुत्र पर शासन करती है। उसे लाड़-प्यार से खिलाती है, पिलाती है, वह जो कुछ चाहती है, पुत्र उस की सदा चिन्ता करता है, माता उस पर और वह माता

पर प्राण देने को तैयार रहते हैं, दोनों का छोटा सा संसार होता है। माता यह समझती है कि पुत्र पर उस का अधिकार है और समझदार पुत्र उसके वात्सल्य के इस अधिकार का पूरा आदर करता है। वह सदा आज्ञा-पालन में तत्पर रहता है। माता पुत्र की दुनिया हँसते-खेलते चलती है, दोनों एक दूसरे में मस्त रहते हैं, इसी समय पुत्र के जीवन में परिवर्तन होता है। उसका यौवन अठखेलियाँ करने लगता है। वह युवतियों की ओर आकृष्ट होता है, पर फिर भी माता का वात्सल्य उसके लिए कम आकर्षण की वस्तु नहीं होता। दिन बीतते हैं, माता अपने पुत्र की प्रसन्नता के लिए बहू तलाश करने लगती है और कुछ दिनों में वह अपने हृदय के समस्त प्रेम व स्नेह के साथ बड़ी बड़ी उमंगों और उत्साह के साथ पुत्र का विवाह कर देती है। नई लक्ष्मी सी बहू आती है, वह इसका बड़े प्रेम से स्वागत करती है। उसे कोई काम नहीं करने देती, सब काम स्वयं करती है। जो आता है, उस के सामने अपनी लक्ष्मी सी बहू की प्रशंसा करते नहीं थकती। मैं पड़ोस की एक वृद्धा को जानती हूँ। वह अपनी बहू को ज़रा भी काम नहीं करनें देती थीं। कई महीने होगये, एक दिन मैंने कहा कि बहू को भी काम करने दिया करो, तुम्हारा बुढ़ापे का शरीर है, थक जाती होगी। वह बड़े स्नेह के साथ बोलीं—"नई जूती को भी लोग नौ दिन तक सम्हाल कर रखते हैं, फिर यह तो मेरी बहू है, मेरे बेटे की रानी है।"

मैं उनका वात्सल्यपूर्ण उत्तर सुनकर चकित रह गई। लेकिन कुछ दिन बीते, महीने बीते और एक साल बीता। अब सारा दृश्य ही बदल गया था। सास और बहू दोनों एक दूसरे को तनिक न सुहाते थे। सास सदा बहू की आलोचना करती, उसे कोई काम ठीक न करते देखकर कुढ़ती और फिर तो वाग्युद्ध तक नौबत पहुँचती। कोई दिन खाली न जाता, जब कि घण्टा आध घण्टा परस्पर विवाद न हो जाता। वैसी प्रेम और स्नेह से पूर्ण सास भी बहू की दुश्मन बन गई। आखिर इसका कारण क्या है?

मैं तो बहुत सोचने-समझने पर इसका सब से मुख्य एक ही कारण समझी हूँ। सास देखती है कि जो पुत्र सदा उसका आज्ञानुवर्ती रहा करता था, अब वह पत्नी की इच्छा पर चलता है, उसी का मुख देखता है, दफ़्तर से आकर या प्रातःकाल आकर माता के कमरे में नहीं जाता, माता से रोटी नहीं माँगता, दफ़्तर जाते समय माता से कोई चीज लानी है, यह नहीं पूछता। उसके जिस अभाव की पूर्ति माँ करती थी, अब उसकी पूर्ति के लिए माँ के पास न जाकर पत्नी के पास जाता है। दोनों सिनेमा जाते हैं, घूमने जाते हैं, पर माँ से पूछते नहीं। कुछ खाते हैं तो माँ के कहने की अपेक्षा नहीं करते; गपशप मारते हैं, तो उस आनन्द में माँ को भूल जाते हैं। माँ यह सब देखकर जल-भुन जाती है। यह नहीं कि माँ अपने पुत्र के मनोविनोद और

प्रसन्नता को नहीं चाहती, उसका प्रेमल वात्सल्यपूर्ण हृदय अब भी पुत्र को बहू के साथ हँसते-खेलते देखना चाहता है, परन्तु इसके साथ साथ वह यह अवश्य चाहती है कि मेरी उपेक्षा न हो, मेरा सम्मान वे सदा करते रहें। बस, उसकी उपेक्षा उसमें ईर्ष्या भर देती है। वह समझने लगती है कि यह बहू ही सारे अनर्थों की जड़ है, जिससे मेरे पुत्र को—मेरे लाड़ले बेटे को मुझ से विमुख कर दिया। एक बार दिल में उत्पन्न यह वितृष्णा शनैः शनैः क्रोध और वैर में बदल जाती है। माँ को इतना समझदार होना चाहिए कि वह यौवन के नशे में मस्त अपने पुत्र और बहू के इस व्यवहार को क्षमा करदे, परन्तु ऐसा होता नहीं। हम जब अपनी सहेली पर एकाधिकार की कामना करती हैं, उसे दूसरे के साथ घुलते-मिलते देखना पसन्द नहीं करतीं, तब माता, जिसने पुत्र को जन्म दिया है, पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है, वह कैसे सहन कर ले।

श्री पट्टाभिसीतारमैया भी इसी प्रसंग में लिखते हैं:—

"पुत्र की सेवा शुश्रूषा के लिए स्त्री और माता के बीच स्पर्धा होती है। इस स्पर्धा का यह अनिवार्य परिणाम होता है कि माता अनुभव करती है कि वह पुत्र, जिसको उसने स्वयं उत्पन्न किया है, जिसने उसका पालन-पोषण किया है और उसे बड़ा कर शिक्षित किया है, वह अब उसके हाथ से निकल गया है, उसके साथ कभी नहीं उठता-बैठता, घरेलू

मामलों में उससे सलाह नहीं लेता और अपनी हृदय की रानी का दास बन गया है। इस तरह जो उसकी पुत्री के समान थी, जिसे घर में लाने की उसे बड़ी साध थी, जिस पर उसे अपनी वृद्धावस्था का भरोसा था, वह उसके पुत्र का हृदय चुराकर उसकी प्रतिद्वंद्विनी बन गई है, घर के अन्दर शत्रु बन गई है।

इसका भी इलाज है और बहुत आसान है। तुम्हें जब कहीं जाना हो, सास से कहो—चलिए माता जी, आज सिनेमा चलें। घूमने जाना हो, तो माँ को साथ ले जाने का प्रस्ताव करो। कोई कपड़े लाने हों तो उनसे कहो कि वह साथ जाकर ले दें। कभी ताश खेलने लगो तो माता जी को बुला लो। बहुत कम समय वह स्वयं सम्मिलित होंगी। खुशी खुशी तुम्हें आज्ञा दे देंगी। जब तुम्हारे पति मासिक वेतन लावें, वह स्वयं माता जी को देवें या तुम्हीं माता जी को दे देना। बस, उनका वत्सल हृदय तुम्हारे इस व्यवहार से गद्‌गद् हो जायगा। और वह कुछ समय बाद बहुत प्रेम से कहने लगेंगी कि बहू रानी, तुम्हीं सम्हालो। वह कोई काम करने लगें, तो तुम कह सकती हो कि माता जी आप वृद्ध हैं, झाड़ू मैं ही लगा दूँगी। रसोई घर पर उनका अधिकार है, इसमें बैठकर उन्होंने बरसों अपने पति को, अपने पुत्रों को खिलाया है, पिलाया है, यह उनकी राजगद्दी है, इस पर अधिकार का प्रयत्न मत करना, जब रसोई का काम करना

उनकी अनुमति से करना। मतलब यह कि उन्हें प्रति क्षण यह मालूम हो कि घर की असली स्वामिनी वही हैं, रसोई घर पर उन्हीं का अधिकार है, तुम केवल उनकी प्रतिनिधि हो। शासन का नशा सचमुच जल्दी नहीं हटता, तुम उनकी इस भावना को चोट मत पहुँचाओ। बस, फिर तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं। माता जी तुम्हें और पुत्र को परस्पर हँसते-खेलते देखकर खुश होंगी। पुत्र की इसी खुशी के लिए तो वह बड़ी उमंगों के साथ तुम्हें अपने घर में लाई थीं। बस, उन्हें यह कभी मालूम न हो कि तुम्हारे द्वारा उनकी उपेक्षा हो रही है।

बाकी सब झगड़े इसी एक सचाई को न समझने के कारण पैदा होते हैं। यही एक मुख्य सत्य है। दो एक बातें और भी हैं, जिन की ओर ध्यान देने से ऐसे सवाल पैदा नहीं होते। पत्र बहुत लम्बा हो गया, इसलिए उन्हें गिना कर ही बस करती हूँ।

१—सास जिस तरह अपनी मान-प्रतिष्ठा चाहती है, उसी तरह अपने पति—तुम्हारे श्वसुर—की भी।

२—उन्हें अपनी बेटी भी (तुम्हारी ननद) प्राणों से प्यारी है और अपने छोटे बच्चों की ओर से भी वह उदासीन नहीं हैं। उनकी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना।

३—वह पूजा पाठ या पुराने संस्कारों के पालन में ज्यादा सतर्क होंगी, तुम्हें उतपर श्रद्धा न भी हो तो उनका मजाक मत

बढ़ाना।

४—यदि कभी वह क्रोध भी करें तो तुम्हें सास के सामने विनयशील बनकर रहना चाहिए।

५—हमेशा अपने घर की बड़ाई करके ससुराल को हीन सिद्ध करने की चेष्टा मत करना।

६—और पति की आँखों से मत गिरना, क्योंकि एक बार उनकी आँखों से गिरी, तो सभी की आँखों से गिर जाओगी।

सास तुम्हारी माँ नहीं, परन्तु तुम्हारे हृदय-सर्वस्व की तो माँ हैं। उनको शिक्षित करने में और जो कुछ वह हैं, वैसा उन को बनाने में तो उन्होंने अपना खून-पसीना एक कर दिया है। इस ऋण को भला कोई भी कभी उतार सकती है?

बस और क्या लिखूँ बहनोई जी को नमस्ते। सुना था कि जल्दी ही मैं मासी कहलाने लगूँगी, क्या यह सच है? तुम्हें मेरी कसम, छिपाना मत।

तुम्हारी—

शारदा

आर्थिक प्रश्नों की जानकारी

प्रिय इन्दुरानी,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों बाद मिला। फिर मैं भी कुछ कार्यों में ऐसी व्यस्त रही कि तुम्हें शीघ्र उत्तर न दे सकी। बात यह हुई कि हमारे पड़ोस में एक युवती, यही २०-२१ साल उम्र होगी, विधवा हो गई। उसके पति एकाएक निमोनिये से सात दिन तक ग्रस्त रह कर चल बसे और उसकी दुनिया सदा के लिये समाप्त हो गई। उसकी हालत देख कर तरस आता था, रोने के कारण सूजी हुई उसकी आँखें तथा कुम्हलाया हुआ मुँह देख कर स्वयं ही रोना आता था। आखिर बेचारी का जीवन-संगी, जो उसके जीवन का अवलम्ब था, सदा के लिये चला गया। कोई भी स्त्री इस दुःख की थोड़ी-बहुत कल्पना कर सकती है। परन्तु इससे भी अधिक करुणापूर्ण कहानी इसके बाद शुरू होती है। उसकी सास सदा उसे ताने दिया करती

है कि तुम ने मेरे बेटे को खा लिया, यद्यपि वह सातों दिन पति की रोग-शय्या के पास बैठी सेवा करती रही। इन सात दिनों में वह मुश्किल से कुल छः सात घण्टे सोयी होगी। २४ में से २३ घण्टे पति की सेवा, मल-मूत्र की सफ़ाई, दवाई, पानी-दूध सभी कुछ वही देती थी। सास को उसने एक मिनट भी कोई कष्ट नहीं होने दिया। लेकिन उसका भाग्य, वह निरन्तर सेवा करके भी पति को न बचा सकी। डाक्टर बुलाना तो उसके वश में न था, उसकी व्यवस्था घर के दूसरे लोगों ने की। अब सास के प्रतिदिन के विष-भरे तानों से वह परेशान है। एक तो वैधव्य की नरक से भी अधिक यंत्रणा, फिर उस पर रोज़ गालियों की वर्षा। केवल एक बालक है, जिसे देख कर कभी कभी चित्त बहलाने का प्रयत्न करती है, परन्तु जब वह अपने बालक के भविष्य की 'अन्धकारपूर्ण कल्पना करती है, तब काँप जाती है। बच्चे का पालन-पोषण-शिक्षण, इन सब के लिये तो आखिर हज़ारों रुपया चाहिये। क्या जानें, कौन इतना खर्च करेगा। आजकल कितने जेठ या देवर हैं, जो अपने भतीजों को अपने पुत्र की तरह प्यार करते हैं, और उनके पालन-पोषण की चिन्ता करते हैं ? यह सोचते हुए भी उसे इस बात का एक छोटा-सा सहारा था कि उसके पति ने कहीं बीमा करा रखा था, वह मिल जायगा, कुछ जायदाद भी मिलेगी, उसी से किसी तरह माँ-पुत्र गुज़ारा कर लेंगे। लेकिन एक दिन उसने सुना कि उसे कुछ भी न मिलेगा, बीमे

का रुपया, बैंक में पड़ी जमा रकम तथा जायदाद उसके जेठ व देवर ने आपस में बाँट ली। अब वह और उसका पुत्र उम्र भर के लिये उनके आश्रित हो गये या यों कहना चाहिये कि सदा के लिये आश्रयहीन बन गये।

मुहल्ले में जब यह चर्चा चली तो जिन लोगों ने उस ी सहायता का निश्चय किया, उनमें तुम्हारे जीजाजी भी हैं। दरअसल उन्हें ही इस काम का कर्ता-धर्ता कह सकते हैं। वह कभी अदालतों में जाते हैं, तो कभी किसी अफसर के यहाँ। उस विधवा के साथ मुझे भी दिन भर रहना पड़ता है। अब कुछ कुछ सफलता की उम्मीद होने लगी है कि कुछ न कुछ रुपया आखिर उसे अवश्य मिल जायगा। सास भी उसे देखना नहीं चाहती और जेठ-देवर तो सदा इस काम में रोड़े अटकाते हैं। यदि ऐसा न होता तो काम बहुत पहले बन जाता। तुम्हारे जीजाजी कभी कभी कहते हैं कि उस विधवा पर इतनी विपत्ति आने का मुख्य कारण जहाँ समाज और क़ानून की व्यवस्था है, वहाँ उसका अपना अज्ञान भी है। यदि वह इन आर्थिक प्रश्नों को कुछ भी समझती व बूझती तो जेठ या देवर उस पर इतना अत्याचार न कर सकते। सचमुच दुनिया के इन प्रश्नों को न समझने के कारण ही हिन्दू समाज की लाखों विधवाएँ कष्ट पा रही हैं, स्वार्थी सम्बन्धियों के द्वारा सताई जा रही हैं।

उसी युवती विधवा की चर्चा के प्रारम्भ में 'वह' एक दिन

अपने ट्रंक से कुछ कागज़ व किताबें ले आये। कहने लगे—"देखो, मैंने अमुक अमुक कम्पनी में इस रकम का बीमा कराया हुआ है। इतने वर्ष के बाद यह रकम हमें मिल जायगी और यदि आज भी मेरा शरीरपात हो जाय तो इतने हज़ार रुपये तुम्हें मिल जावेंगे।" मैंने यह अमंगल की बात न कहने के लिये कितना ही अनुनय किया, पर वह नहीं माने। कहने लगे, "ऐसा करने से मैं अपनी उम्र से पहले दुनिया से कूच नही करूँगा, परन्तु यदि केवल स्त्री की प्रार्थना और मंगल-कामना से ही पति को चिरायुष्य प्राप्त हो सकता, तो आज भारत में कोई युवती विधवा न होती। मृत्यु एक ऐसा कठोर सत्य है, जिसकी ओर से आँख मूँद लेने मात्र से उसे रोका नही जा सकता। वह अवश्यम्भावी है और कोई नहीं कह सकता कि वह कब आयगी, यद्यपि हर एक आदमी "जीवेम शरदः शतं" की प्रार्थना करता रहता है। स्वस्थ से स्वस्थ मनुष्य भी किसी क्षण दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं, जिसकी कभी किसी ने कल्पना भी नहीं की होती। तुम स्त्रियों की मंगल-कामना का फल होता होगा, परन्तु हमारे अपने कर्म भी तो लए केवल अमंगल कह कर किसी कठोर सत्य से आँख मूँद लेना अच्छा नहीं।" यह सब उन्होंने इतनी गम्भीरता से कहा कि मैं तीव्र अनिच्छा के बाद भी सुनती रही।

वह फिर अपने कागज़ दिखाते हुए बोले—बीमे का रुपया लेने के लिये इस प्रकार की दरख्वास्त देनी चाहिये। बैंक से

रुपया इस प्रकार निकाला जाता है, और ये नाम उन लोगों के हैं जिन्हें मैंने रुपया दे रखा है। यदि वे रुपया न दें, तो इन कागज़ों के आधार पर अदालत-द्वारा कानूनी सहायता प्राप्त की जा सकती है। यह हमारी जायदाद है, जिस पर मेरे जाने के बाद मेरे भाई तुम से झगड़ा कर सकते हैं। लेकिन यह वसीयतनामा है तुम्हारे नाम।" वसीयत शब्द सुन कर ही एक अमंगल कल्पना से मैं काँप उठी और बात को ख़तम करने के इरादे से उठ कर चली गई। मैं उस रात को बहुत देर तक नहीं सोई और अकेले में मंगलमय भगवान से न जाने कितनी देर तक अपने सौभाग्य को अखण्ड बनाये रखने के लिये प्रार्थना करती रही।

लेकिन अब सोचती हूँ कि उनके इस तरह बताने में कुछ भी अनुचित न था। प्रत्येक स्त्री को यह ज्ञान होना चाहिए कि पति के अभाव में उसे किस तरह बीमा कम्पनी या बैङ्क से रुपया निकालना चाहिए। उसे पति की आर्थिक स्थिति तथा व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। यदि उस विधवा को ये सब बातें पता होतीं, तो आज उसे क्यों कष्ट भोगने पड़ते? वैधव्य ही नहीं, साधारण अवस्था में भी इस व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। स्त्री यदि जीवन-संगिनी है तो उसे पति की आर्थिक स्थिति की जानकारी क्यों न हो? 'ग़बन' नाम का श्री प्रेमचन्द का उपन्यास है, जिसका मैंने पहले भी ज़िक्र किया है, उसमें एक आदमी अपनी स्त्री से

वास्तविक स्थिति छिपाता है, नतीजा यह होता है कि वह रोज़मर्रा गहनों की फ़रमाइश करती है और वह कर्ज़ लेकर उसका काम चलाता है और अन्त में बैंक से ग़बन करने पर विवश होता है। और उसे जेल जाना पड़ता है। यदि उसकी पत्नी अपने पति की आर्थिक स्थिति से परिचित होती, तो वह कभी गहनों के लिए तकाज़ा न करती और उसका जीवन कभी विषमय न बनता।

हमारे शहर में एक और सज्जन हैं, नेता हैं, सब जगह उनका सम्मान है, उनका एक छोटा सा कारोबार है। उनपर पचीस तीस हज़ार रुपये का कर्ज़ है। लेकिन अपनी पत्नी से सदा वे इस बात को छिपाये रहते हैं। बस, उसके ख़र्च बढ़ते जाते हैं। पति अपनी प्रतिष्ठा को रखने या पत्नी से दबने के वजह से कारोबार से रुपया निकालते जाते हैं और कर्ज़ लेते जाते हैं। नतीजा यह है कि उनके घर का ख़र्च कई गुना बढ़ गया है। यदि वह एक दफ़ा अपनी पत्नी को अपनी वास्तविक स्थिति बतादें तो मुझे निश्चय है कि वह कितनी ही कठोर क्यों न हो आख़िर एक हिन्दू स्त्री है, पति का अमंगल नहीं कर सकती। वह ज़रूर अपने ख़र्च घटायगी और अपने पति की आर्थिक स्थिति के सुधार में सहायता देगी। उनका पारिवारिक जीवन और अधिक सुखी हो जायगा।

एक मेरी सहेली है, दिल उसका बहुत खुला है, और हाथ भी उसका कम खुला नहीं है। उसके पति भी मेरे घर आते

जाते हैं। मैं उन्हें जीजाजी कहती हूँ। मेरी सहेली को अपने हाथ से नहीं करती, उसे अभ्यास ही नहीं है। मियाँ बीबी और एक बच्चा, बस यही छोटा-सा परि दो दो नौकर रखे हुए हैं। एक बालक को खिलाता है, तो एक रोटी बनाता है। यदि किसी दिन घर में नौकर न हो, तो आफ़त आ जाती है। झाड़ू नहीं दिया जाता, रोटी नहीं बनती, डबल रोटी से गुज़ारा किया जाता है। बच्चे तक की कई कई दिन सूखती रहती है। साड़ियों-जम्फरों ढेर लगा रहता है। यों बातचीत में, परस्पर व्यवहार में बर्ताव में अच्छी है. पर आलस्य ने उसे बुरी त ख घर के काम के नाम से एक तिनका भी उठा लेना मुहाल । बच्चे का छोटे से छोटा कपड़ा सीना हो तो दर्ज़ी, बच्चे के कपड़े धोने हों तो धोबी। कोई फल घर आये, नौकर ने खिला दिया तो अच्छा, वरना ४-४ दिन बाद सड़े-गले फल फेंकने पड़ते हैं। उसके पति दर-असल सज्जन हैं। कमाई अच्छी है, यदि घर में कुछ हिसाब से ख़र्च हो, तो २००) रु० मासिक बचत हो सकती है। लेकिन पत्नी को इसकी चिन्ता नहीं, वह देखती है कि पति कमाऊ है, शायद उस के मन में पति का अर्थ ही है—खूब कमाने वाला। पति के भविष्य का उसे कोई विचार नहीं। पति जानते हैं, और मन ही मन कुढ़ते भी हैं, लेकिन जब उनसे अपनी पत्नी को समझाने के लिए कहा जाता है तो कहते हैं 'कि भाई क्या

करें। अब उसका स्वभाव बदला जाना असंभव है। बार-बार कहकर क्यों घर की शांति को भंग करूँ? मजबूर होकर उन्हें एक नया काम शुरू करना पड़ा है, जो उनकी रुचि और स्वभाव से प्रतिकूल है, लेकिन पत्नी की नित्य की नई फ़रमायशों को वे रोक नहीं सके। बात यह है कि पत्नी ने पति की जरूरत और आर्थिक स्थिति और भविष्य की ओर कभी एक बार भी देखने का प्रयत्न नहीं किया।

इसलिए मैं तो कहना चाहती हूँ कि प्रत्येक स्त्री को सदा भाग्य की अनुकूलता पर ही दृष्टि नही रखनी चाहिए, उसके प्रतिकूल होने की सम्भावना को भी आँखों से ओझल नही होने देना चाहिए। हर एक परिवार को विपत्ति का मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसका सब से अच्छा उपाय जहाँ बीमा कराना और प्रति मास कुछ बचत करना है, वहाँ अपनी पत्नी को भी इस सम्बन्ध में सारी कार्रवाइयों और कानून से परिचित रखना चाहिए। केवल अमंगल की बात ही नहीं, इस प्रकार की वर्तमान और भविष्य की व्यवस्था से घर में भी शान्ति रहती है, स्त्री को एक आत्मविश्वास-सा रहता है।

मैं पिछले पत्र में एक विद्वान पण्डित जी की चर्चा कर आई हू, जिनकी पत्नी के बारे में मैंने शायद लिखा था कि उसे इस बात की तमीज़ नहीं थी कि कब क्या कहना चाहिए। वह थके-माँदे पति पर घर की दहलीज़ पर पैर रखने से पूर्व

की फरमाइशों और उलाहनों की बौछार कर देती थी। उसी की एक बात याद आगई। वह बाल-विधवा थी और उन पण्डित जी ने कृपाकर उससे पुनर्विवाह कर लिया था। विवाह के बाद दो एक वर्ष बीते कि उसके दिल में एक अप्रकट-सी आशंका रहने लगी कि यदि मैं फिर विधवा हो जाऊँ! एक बार वह वैधव्य का नरक देख चुकी थी। इसलिए उसके हृदय में यह धुक-धुकी लगी रहती थी। ऐसी अमंगल की बात वह जबान पर भी न ला सकती थी इसलिए वह इस आशङ्का को बहुत दृढ़ता से सदा छिपाये रही। लेकिन जब उसकी दो संतानें होगईं, उसने एक दिन अपने पति से उनके भविष्य-जीवन की चिन्ता करने के लिए कह दिया। उनके पति शायद उसकी आशङ्का समझ गये और २०००) रु० बीमे के अलावा प्रति मास उसे १५) रु० देने की व्यवस्था की, तब जाकर उसकी आशङ्का समाप्त हुई और एक प्रकार के आत्म-विश्वास ने उसके जीवन में शान्ति-सी पैदा करदी, फिर वह घर के खर्चों में और भी मितव्ययता से काम लेने लगी।

यह सब बातें लिखने का कोई इरादा नहीं था। जब पत्र लिखने बैठी थी तो यह सोचा था कि तुम जिस अवतार को अपने अन्दर धारण कर रही हो, उस के बारे में मैं तुम्हें कुछ बताऊँगी, लेकिन उस युवती विधवा की करुण आँखें मुझे नहीं भूलतीं, जो केवल अपने अज्ञानवश इस भीषण विपत्ति में फँस गई है। इसीलिए इस पत्र में वैसी ही चर्चा चल पड़ी।

अगले पत्र में तुम्हें कुछ आवश्यक सूचनाएँ देने का प्रयत्न करूँगी। अपने स्वास्थ्य का समाचार जरूर लिखना।

बहनोई जी को प्रणाम। दोनों बच्चे इस समय कह रहे हैं कि उनकी ओर से भी नमस्ते तुम्हें लिख दूँ। बड़ा तो तुम्हारे पास आने के लिए भी कह रहा है।

शुभाकांक्षिणी

शारदा

इच्छानुकूल संतान का निर्माण

प्यारी इन्दुरानी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरा पत्र बहनोई जी को दिखा दिया। वह मेरे पत्रों को बहुत पसन्द करते हैं, यह उनकी कृपा है। लेकिन पिछला पत्र तो उनके देखने लायक न था। कहीं वह इसका कुछ दूसरा अर्थ न लगा ले। तुम सदा सौभाग्य-वती रहो, विधवा की करुण कथा लिखकर शायद मैंने ग़लती की। पर क्या करती, उन दिनों उसकी करुण दशा देखकर उसे भूल ही न सकती थी। समय-असमय उसी का विचार छाया रहता था। जब पत्र लिखने बैठी, तब भी वही बाते लिख गई। लेकिन इतना अवश्य कहती हूँ कि उसमे की एक बात भी असत्य नही है।

तुमने अपने पत्र मे यह नहीं बताया कि कब तुम्हें बधाई देने का मौका आयगा। तुम्हारे पत्र से मालूम होता है कि

अभी तक तुम्हें मितली आदि की शिकायत जारी है। इसलिए मेरा खयाल है कि अभी डेढ़ दो मास से अधिक नहीं हुआ होगा। नारी का सर्वोत्तम रूप मातृत्व में है, इसके बारे में तुम्हें शायद बहुत पहले कभी लिख भी चुकी हूँ। इसलिए मातृत्व के संबंध में अधिक से अधिक जानकारी एक कन्या को मिल जानी चाहिए। लेकिन यह देखकर अत्यन्त दुःख व आश्चर्य होता है कि इसी के संबंध में हमारे कन्या-शिक्षालयों में सब से अधिक उदासीनता दिखाई जाती है। इस विषय को छेड़ना भी पाप समझा जाता है। कुमारी कन्या से मातृत्व (गर्भ) की चर्चा करना भी बहुत बुरा माना जाता है। मेरा एक कन्या विद्यालय से संबंध है। उसकी परामर्श समिति में मैंने प्रस्ताव किया कि मातृत्व के संबंध में कुछ व्याख्यानों का एक सिलसिला चलाया जाय। लेकिन समिति के प्रायः सभी सदस्यों ने इस विचार मात्र का विरोध किया। कितना अस्वाभाविक और अदूरदर्शितापूर्ण है यह विचार। समस्त जीवन में स्त्री को मातृत्व से काम पड़ता है, उसी चीज की हम शिक्षा नहीं दे पाते। उसे हम शिक्षा देते हैं ज्योमिति और बीज गणित की, उसे हम पढ़ाते हैं शेक्सपियर और मिल्टन की कविता, तुलसी और सूर की भक्ति-धारा में उसे स्नान कराते हैं, दुनिया भर के भूगोल का परिचय हम उसे देते हैं, लेकिन उसे यह मालूम होने देना अच्छा समझते हैं कि भावी जीवन में उसे माता बनना

है और मातृत्व के लिए जरूरी हिदायतें कौनसी हैं? मानो शिक्षा का हमारे अपने जीवन से कोई संबंध ही नहीं है। कितना बड़ा अंधेर है यह ?

इस अधूरी शिक्षा और वर्तमान फैशनेबल सभ्यता का परिणाम यह हुआ है कि आज कल मातृत्व से नवयुवतियाँ घबराती हैं। वे इसमें गौरव के बजाय हीनता का ही अधिक अनुभव करती हैं। वे विवाह के बाद कामशास्त्र की मनोरंजक व उत्तेजक पुस्तकें तो पढ़ती हैं, परन्तु मातृत्व के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करती। मैं नहीं जानती कि इस संबंध में तुमने किसी पुस्तक का अध्ययन किया है या नहीं ? इसलिए इस पत्र में कुछ आवश्यक निर्देश लिखने का मेरा इरादा है।

किसी छोटी सी चीज़ को बनाने के लिये हमें बहुत तैयारी करनी पड़ती है। रोटी ही बनानी हो, तो उसके लिए अच्छा गेहूँ, उसकी सफ़ाई और पिसाई, आटा गूँदना, आग जलाना रोटी बेलना, तवे पर डालना और सेकना आदि सभी क्रियाओं के बाद कहीं जाकर दो पैसे की रोटी बन पाती है। रोटी बनाते समय हमें इस की ओर पूरा ध्यान देना पड़ता है कि कहीं कच्ची न रह जाय या कहीं जल न जाय। इसी तरह कपड़ा बनाते और सीते समय, या एक तस्वीर बनाते हुए हमें पूर्ण मनोयोग से काम करना होता है। पहले हम उस कार्य के करने का निश्चय करते हैं, उसके लिए आवश्यक सामग्री

जुटाते हैं और फिर कहीं जाकर उसे बनाते हैं। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि संसार की सब वस्तुओं में श्रेष्ठ वस्तु मनुष्य का निर्माण करने के लिए हम न कोई विचार करते हैं, न कोई तैयारी और न बनाते समय उसके लिए आवश्यक निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता समझते हैं। यह तो मंगलमय भगवान की कृपा है कि इतनी गफ़लत के बाद भी दुनिया में कोई कोई महापुरुष पैदा हो जाते हैं। हालैण्ड के एक महापुरुष की जीवनी लिखते हुए उस के लेखक ने लिखा था कि वह महापुरुष भी संसार के अन्य करोड़ों मनुष्यों की तरह एक रात की दो मिनिटों की भूल का परिणाम था। संस्कृत में एक कहावत है 'घुणाक्षरन्याय'। इस का अर्थ यह है कि कभी कभी दीमक भी इस ढंग से लकड़ी को काटता है कि अक्षर खुद जाता है। उसी तरह सचमुच बिना किसी तैयारी के ही कभी कभी कोई महापुरुष अचानक पैदा हो जाते हैं। यदि लोग सचमुच संतान के निर्माण का प्रयत्न करें, तो न जाने दुनिया कितनी बदल जाय। कभी तो माता पिता का उद्देश्य संतान का उत्पादन होता ही नहीं, वह तो उनके मनोरंजन की गौण उपज (by-product) मात्र है।

प्राचीन शास्त्रकारों ने संतान के निर्माण का महत्व समझा था और इसीलिए उन्होंने संस्कारों पर इतना बल दिया था। वेद मंत्रों से गर्भाधान संस्कार करते हुए दम्पती यह

निश्चय करते थे कि आज हमें इस पवित्र उद्देश्य से ही परस्पर सहवास करना है। साधारण निर्जीव वस्तुओं की तैयारी में पवित्र मन की इतनी आवश्यकता न हो, परन्तु मन प्राण और आत्मा से पुत्र पदार्थ की तैयारी में जहाँ स्वस्थ और बलवान वीर्य की आवश्यकता है, वहाँ पवित्र और ऊँचे विचार की भी ज़रूरत है। गर्भाधान के बाद फिर पुंसवन और सीमान्तोनयन संस्कार किये जाते थे। इन का भी उद्देश्य माता को यह बताना है कि वह गर्भवती है, उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिऐ कि वह संसार के लिए एक महान् आत्मा का निर्माण कर रही है और उसे सदा उत्तम विचार करना चाहिए, उसका आचरण सदा पवित्र रहे, चित्त-वृत्ति शुद्ध रहे और स्वास्थ्य व चित्त की प्रसन्नता को बनाये रखे। मंत्रों द्वारा बार बार उसे यह उद्देश्य स्मरण कराया जाता है कि उसे पौरुषयुक्त, सुन्दर, दर्शनीय, रूपवान्, बुद्धिमान, दिव्य गुणयुक्त, वीर, दीर्घायु, और विष्णु के श्रेष्ठ रूप से युक्त पुत्र पैदा करना है। जब माता अपने उद्देश्य को सदा स्मरण रखेगी, तब वह गर्भ-कालीन नियमों का सदा आचरण कर सकेगी। वस्तुतः गर्भ-काल में सब से अधिक महत्वपूर्ण वस्तु यही है कि उसे अपने उद्देश्य का स्मरण रहे और उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक नियमों का पालन करे।

अब मैं संक्षेप से उन कुछ नियमों का निर्देश करना चाहती

हूँ, जो इन दिनों के लिए आवश्यक हैं।

इन सब नियमों का पालन यदि तुम करोगी, तो अपनी संतान को स्वस्थ, बलवान और नीरोग बना सकोगी। गर्भ-स्थिति के बाद पहले चार मास तक बच्चे के शरीर के विभिन्न अंग बनते है। पहले गर्भ एक छोटे दाग़ या छींटे के समान होता है, परन्तु, धीरे धीरे बढ़कर दूसरे महीने में एक इंच, चौथे महीने में ५ से ६ इंच और तोल में १६-२० तोले या एक पाव के करीब हो जाता है। पहले चार महीने में उसकी आँखें, नाक, कान, मुँह, हाथ, पैर, तथा लड़की लड़के के भेद-सूचक अंग-विशेष बन जाते हैं। इसके बाद हड्डियाँ गढ़ित होती और सिर का ढाँचा पूरा होता है।

(१) इन दिनों स्त्री को केवल अपने शरीर की आवश्यकता-पूर्ति ही नहीं करनी, गर्भस्थ बालक का निर्माण भी करना है, इस लिए उसका भोजन बहुत सात्विक तथा बलवर्धक होना चाहिए। उत्तम दूध, दही, मक्खन, तथा फल आदि का यथा शक्ति प्रयोग करना चाहिए। भूखा नहीं रहना चाहिए। उपवास नहीं करना चाहिए। अचार, मिर्च, खटाई आदि माता और बालक दोनों के लिए हानिकारक है। जब तक मिचली आती रहें, दूध, साबूदाना, मूँग की दाल की खिचड़ी आदि जल्दी हज़म होने वाली चीजें खानी चाहिएँ। पान में या यों अलग भी थोड़ी केसर रोज खाने से बच्चे के शरीर का रंग साफ़ और अच्छा निकलता है।

(२) रोग से बचने का प्रत्येक उपाय करना चाहिए। रोग
भी पड़ता है। तेज़ रेचन नहीं लेना चाहिए, इससे गर्भस्राव का डर रहता है। इसी तरह चाय, काफ़ी आदि गरम पेय तथा गरम वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए। मैं एक सहेली को जानती हूँ। उसका पहला बालक बहुत साफ़ रंग का है। उसका अपना रंग भी साफ़ है और इसके पति भी साँवले नहीं हैं, लेकिन उसका दूसरा बालक सांवले रंग का हुआ। ऐसा किसी को भी ख्याल न था। एक दिन वह प्रसंगवश स्वयं कहने लगी, "यह मेरा ही दोष है। मैंने उन दिनों बहुत गरम चीजें खाई थी। गर्मियों में धूप में तन्दूर पर बैठे बैठे एक महीने तक सारे परिवार की रोटियाँ बनानी पड़ीं। इस तरह से गर्मी का असर छोटे के रंग पर पड़ा।" बताओ तो अपनी एक भूल के कारण बालक को जीवन भर के लिए अपरूप कर दिया।

(३) स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए आवश्यक है कि शरीर का व्यायाम होता रहे। घर के काम-काज स्वयं करने चाहिएँ, प्रति दिन खुली हवा में दो तीन मील का भ्रमण भी आवश्यक है। चक्की चला सको तो न केवल उस हाथ पिसे आटे से तुम लोगों को विशेष लाभ होगा, बल्कि चक्की चलाने की कसरत तुम्हारे शरीर को भी स्वस्थ रखेगी, प्रसव में बहुत कठिनता नहीं होगी। व्यायाम में इस बात का ध्यान अवश्य रखो कि ऊपर से नीचे उतरना, दौड़-कूद और भारी बोझ

उठाना वर्जित है। और कुछ भी न कर सको, तो घर के काम काज, प्रातः-भ्रमण तो अत्यन्त आवश्यक हैं। तुम्हारा बड़ा भांजा जब हुआ था, यद्यपि वह मेरी प्रथम संतान थी, तब भी मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। इसका कारण यह था कि मैं सदा घूमने जाती थी और प्रसव से दो दिन पूर्व ही ५-६ मील का पैदल भ्रमण किया था।

(४) पति के साथ अधिक सहवास इन दिनों हानिकारक है। ज्यों ज्यों गर्भावस्था में बालक बड़ा होता जायगा, त्यों त्यों यह और भी हानिकारक होगा। स्त्री को संभोग में असुविधा होगी और यह भी असंभव नहीं, कि इस से गर्भस्राव हो जाय। संभोग में केवल पुरुष की ही नहीं, स्त्री की शक्ति का भी बहुत क्षय होता है। गर्भवती स्त्री की समस्त शक्ति बालक के शरीर-निर्माण में लगनी चाहिए। अनेक विशेषज्ञों का मन्तव्य है कि गर्भ-काल में एक दफ़ा भी सहवास न किया जाय, यदि कोई ऐसा संयम कर सके तो बहुत अच्छा हो। यदि ऐसा संभव न हो, तो भी दो महीने में एक दफ़ा से अधिक ऐसा नहीं करना चाहिए और वह भी बहुत सावधानी के साथ। संयम के लिए सब से अधिक आवश्यक यह है कि अलग अलग बिस्तरे पर सोने का नियम बना लिया जाय।

ऊपर बताये गये ये सब नियम ही गर्भ-काल में पर्याप्त नहीं है, इनके अलावा कुछ अन्य नियम भी हैं जिनसे हम बालक का निर्माण कर सकती हैं। निर्माण करने से ही

माता माता कहाती है । इस पत्र में मैंने केवल शारीरिक दृष्टि से ही विचार किया है । पर बहुत सी जरूरी बातें रह गई हैं, वे आगामी पत्र में ।

तुम्हारी हितैषिणी

शारदा

मातृत्व से मत घबराओ

प्रिय बहिन इन्दु,

तुम्हारा पत्र मिला था, तुम स्वस्थ हो और मेरे बताये नियमों का पालन तुमने शुरू कर दिया है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। पिछले दिनों मुझे कान्ति के घर कई दफ़ा जाना पड़ा। तुम भी तो उसे जानती हो। बड़ी भली सी लड़की है। अभी दो साल भी विवाह को नहीं हुए। एक दिन अचानक सुना कि वह हस्पताल में है। जाने पर मालूम हुआ कि गर्भस्राव हुआ है। तुम तो जानती ही हो कि वह मुझे बहुत पसन्द है। बोली—रोज आया करो, तो दिल बहल जायगा। यहाँ हस्पताल में तो दिल नहीं लगता। इसलिए सप्ताह भर वहाँ जाती रही। इसके बाद भी हस्पताल से वापस आने पर मुझे कई दफ़ा उसके घर जाना पड़ा। इसलिए तुम्हें पत्र न लिख सकी।

एक दिन बातचीत में मैंने उससे पूछ लिया कि इसका क्या कारण है ? तुम तो स्वस्थ थीं, तुम्हें यह बीमारी कहाँ से लग गई ? बोली—"क्या बताऊँ, अपने ही दोष से। मैं अभी सन्तान नहीं चाहती थी । इसलिए कुछ गरम चीजें खाईं। मुझे क्या मालूम था कि गर्भस्राव में इतनी अधिक तकलीफ़ का सामना करना पड़ता है ।" उस समय तो मैं उसे कुछ न कह सकी पर दिल में सोचने लगी कि देखो, कैसी सुशिक्षित लड़की है, संस्कृति, माधुर्य्य और भोलापन सभी में तो वह अच्छी मालूम होती है, लेकिन यह तो पाप है, कानूनन भी और नैतिक दृष्टि से भी। गर्भपात एक जीव-हत्या ही तो है । वह ऐसा पाप करने पर क्यों उद्यत हुई। बच्चे यदि उसके कई होते और उनके पालन-पोषण की कठिनता होती, तो भी कोई बात थी । यहाँ तो अभी उसे एक भी सन्तान नहीं। आखिर फिर क्यों वह इस पर तैयार हुई । यह भी कल्पना करने का साहस मैं नहीं कर सकी कि वह लड़की कभी पतित हो गई होगी और किसी परपुरुष से लिये हुए पाप को छिपाना चाहती होगी । वह तो पतिपरायण दीखती है। एक दिन फिर मैंने पूछ ही लिया । वह बोली—"अभी से सन्तान, यह तो बंधन है। अपनी स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है । न कहीं आने के, न कहीं जाने के। बस, सन्तान का अर्थ है घर की चाहरदीवारी में क़ैद। वह भी कहते हैं कि यही दिन तो खाने-पीने और मौज उड़ाने के हैं, यह पचड़ा तो

मुझे पसन्द नहीं है।" वह कुछ कुछ बातों में खुल रही थी। मैं बोली—'तब पहले से ही चिन्ता क्यों नहीं की ?' मुँह नीचा करते हुए वह बोली कि "क्या बताऊँ, वह मानते ही नहीं।" "तब भी तो उपाप हैं।" "हाँ. तभी तो अब तक बची हुई थी। पर आखिर कहीं असावधानी रह गई।"

यह एक कान्ति ही नहीं बल्कि इस देश में आज हजारों स्त्रियाँ ऐसी हैं और यह कहते दुःख होता है कि मध्यम और उच्च श्रेणी की स्त्रियों में जिन्होंने थोड़ा-बहुत अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लिया है, यह बीमारी फैल रही है। फ़ैशन ने भी इसे बहुत बढ़ा दिया है। मातृत्व में फ़ैशन की गुंजायश बहुत कम रह जाती है। आजकल स्वार्थ-प्रवृत्ति भारत के उच्च समाज में ही नहीं, समस्त यूरोप में नारी को मातृत्व के बजाय रमणी रूप में रखने के लिए प्रेरित करती है। उन्हें अपने सौंदर्य को स्थिर रखने की चिन्ता है, वे अपने प्रेमियों के साथ सिनेमा जाना चाहती हैं। प्रति दिन अपने सभ्य समाज में चायपार्टी या दावत की उन्हें फ़िक्र है। वे सवेरे-शाम विशेष विशेष पार्कों में सैर करने के लिए आतुर हैं, रेशमी साड़ी या दूसरे कपड़ों में तथा विशेष प्रकार के केश-विन्यास के सौंदर्य को कायम रखने की चिन्ता है। सार्वजनिक कार्य में रुचि लेने वाली स्त्रियाँ सभाओं में अपने पूर्ण शृंगार व आकर्षक रूप के साथ जाने को उत्सुक रहती हैं। विषय-वासना भी उन्हें विशेष रूप से प्रिय है। रमणीत्व प्रदर्शन के इन सब प्रकारों से मातृत्व

भिन्न वस्तु है। रमणीत्व में केवल स्वार्थ है, मातृत्व में केवल कर्तव्य। रमणीत्व अपने तक सीमित रहता है, मातृत्व अपने से भिन्न किसी व्यक्ति का, चाहे वह कितना ही अपना क्यों न हो, हित देखता है। मातृत्व में विषय-वासना नहीं है, उत्तेजक प्रेम नहीं है। वहाँ है पवित्र मधुर स्नेह, जिसका आधार त्याग है। आजकल की फ़ैशनेबल गर्भवती युवती को चौथे-पाँचवें महीने समाज या सखी-सहेलियों में आते-जाते कुछ लज्जा या संकोच का अनुभव होता है। मैं नहीं समझती कि आखिर यह क्यों? मातृत्व में ही नारी का चरम विकास है। तुम्हें शायद स्मरण होगा कि मैंने विवाह कर लेने की प्रेरणा के लिए जो पत्र तुम्हें लिखे थे, उन में भी यह बताने की चेष्टा की थी कि कर्तव्य स्वार्थ से ऊँचा है और इसके लिए विवाह से घबराना कायरता है। वह महान् कर्तव्य मातृत्व में ही है। बनारस के प्रकाण्ड विद्वान बा० भगवानदास ने ठीक ही कहा है कि—"स्त्रियों की बहुसंख्या स्वभावतः अविवाहित कुमारियाँ बनने के बजाय घर की लक्ष्मियाँ, सरस्वतियाँ और अन्नपूर्णाएँ बनने के अधिक उपयुक्त हैं, जहाँ उनकी उपस्थिति ही घर के लोगों के जीवन में प्रसन्नता और शक्ति लाती तथा अपने कामों को सफलतापूर्वक करने के लिए प्रोत्साहित करती है।"

इस संबंध में श्री रामनाथ 'सुमन' ने भी अपनी पुस्तक आनन्द-निकेतन में चर्चा की है। वह लिखते हैं, "मातृत्व का

लोक-कल्याणकारी और मानव-जाति पर शासन करने वाला पर उत्तरदायित्त्वपूर्ण और कष्टकर रूप और आदर्श उसके सामने से दिन प्रति दिन लोप हो रहा है और उसकी जगह पर रमणी-रूप प्रधान होता जाता है। नारी के गौरव की स्वतंत्रता रमणी रूप में कभी अक्षुण्ण नहीं रह सकती, क्योंकि नारी के रमणी रूप की सार्थकता पुरुष के बिना नहीं है।······ वर्तमान नारी लघुता के अनुभव के कारण प्रत्येक क्षेत्र पुरुष का अनुसरण करने में व्यस्त है। नारीत्व नहीं, पौरुष उसका आदर्श हो रहा है।······फ़ैशन, बनाव, शृंगार प्रसाधन की बाढ़ में नारी ने अपना आंतरिक सत्व अन्तः-मूल्य (Intrinsic worth) भुला दिया है और वह बाह्य मूल्य के लिए छटपटा रही है। यह एक प्रतिदिन के अनुभव का विषय है कि आधुनिक युवती में पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्तियाँ अधिक सजग हो उठी हैं और इसके लिए उसे अपने को अधिक आकर्षक बनाने की चिन्ता में बहुत समय एवं शक्ति व्यय करनी पड़ रही है। शरीर को जीवन में बहुत अधिक प्रधानता मिल गई है और इन सब के कारण रमणी ऊपर आ गई है और पनप रही है जब कि माता बोझ के नीचे दब गई है।"

आज गृह-लक्ष्मी विवाहित जीवन से स्वच्छंद कुमारी बनने या कम से कम उस रूप में अपने को दिखाने का प्रयत्न करती है। बस, यही कारण है कान्ति तथा उसकी हजारों बहनों के

गर्भपात कराने का। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे विचार मेरे विचारों के विरुद्ध नहीं होंगे।

फिर अगर इतनी ऊँची बातों को छोड़ भी दूँ, बिलकुल स्वार्थ की ही दृष्टि से भी विचार करूँ, तो भी गर्भपात बहुत हानिप्रद है। गर्भस्राव अप्राकृतिक वस्तु है, इसलिए इस में नारी को बहुत कष्ट होता है। साधारण दवाइयों से यह गर्भस्राव नहीं होता, इसके लिए बहुत गरम औषध लेनी पड़ती है, इन गरम दवाइयों का शरीर पर बहुत असर पड़ता है। कभी कभी तो मृत्यु तक का ख़तरा आ जाता है। उचित समय पर प्रसव से इतनी स्त्रियाँ नहीं मरती, जितनी असमय पर गर्भ गिर जाने से। मेरे मुहल्ले में ही एक स्त्री थी, मेरी बड़ी अच्छी सहेली थी। उसका मधुर स्वभाव, सुन्दर शरीर और सब से बढ़कर उसकी समझदारी सारे मुहल्ले का उसे आकर्षण-केन्द्र बनाये हुए थी। पिछले दिनों उसका देहान्त हो गया। सुनते हैं कि वह इसी प्रयत्न में गरम दवाइयाँ खाकर ही बीमार हुई। दो हज़ार रुपए उसके इलाज पर ख़र्च कर दिए गए, लेकिन वह न बच सकी। फिर एक और बात भी है। एक बार गर्भस्राव हो जाय, तो फिर गर्भ धारण करने की क्षमता भी कभी-कभी नष्ट हो जाती है। प्रत्येक गर्भ दूसरा तीसरा महीना शुरू होते ही स्वयं गिर जाता है। बहुत प्रयत्न से इस बीमारी से छुटकारा मिलता है।

पिछले पत्र में, मैंने गर्भ-काल के कुछ नियम बताये थे। आज भी उन्हीं की चर्चा करना पसन्द करूँगी। चौथे-पाँचवें

मास से बालक के मन और मस्तिष्क बनने लगते हैं और इसलिए माता की मानसिक स्थिति का उस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि इन महीनों में माता को सदा प्रसन्न रहना चाहिए। चित्त में सदा संतोष, हर्ष और शान्ति का भाव सन्तान में ऐसे गुणों का समावेश करेगा। यही काल है सन्तान के चरित्र के निर्माण का। वह जिन गुणों को अपनी संतान में देखना चाहती है, उन गुणों को वह स्वयं अपने में धारण करे। थोड़ी थोड़ी बात पर खिजना, पर-निन्दा, क्रोध, या विषय-विलास में डूबना सभी त्याज्य हैं। सान्तन-शास्त्र की सभी पुस्तकों में मनचाही मन्तान पैदा करने के उपाय लिखे हैं। यह वस्तुतः ठीक है। इस के अनेक उदाहरण मैं स्वयं जानती हूँ। जिन पण्डित जी की चर्चा मैं पहले कर आई हूँ, उनकी पत्नी अशिक्षित है। जब वह माता बनने लगी, तब पण्डित जी ने प्रतिदिन संध्या-हवन शुरू कर दिया और कुछ वेद का स्वाध्याय भी। पत्नी भी इस समय उपस्थित रहती थी। मैं आज उनकी सन्तान को जानती हूँ, बचपन में वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि निकली। दूर क्यों जाऊँ, अपने बड़े भांजे अशोक को ही देख लो। इसकी बार मैंने 'वर्तमान भारत' 'देश की बात' तथा अन्य राजनैतिक, इतिहासिक पुस्तकों का अध्ययन बहुत किया। इसका प्रभाव उस बालक का आज का मस्तिष्क बता रहा है। तुम तो जानती ही हो कि वह विविध विषयों में कितनी रुचि लेता है। उसके विपरीत सुभाष

के समय मैंने पढ़ाई-लिखाई की ओर कम ध्यान दिया, तो उसकी भी इधर कम रुचि है। मैंने और भी परीक्षण किया। अशोक के समय मैंने दो चित्र घर में लटकाये थे। दोनों का प्रतिबिम्ब उसके चेहरे में देखती हूँ।

स्वाध्याय, सत्संगति, सुन्दर भाव, तथा विविध आदर्श चरित्रों और चित्रों से तुम अपनी सन्तान का यथेच्छ निर्माण कर सकती हो। एक बार यह निश्चय कर लो कि तुम्हें कौन सा आदर्श पसन्द है। बस, फिर उसके अनुरूप ग्रन्थों का अध्ययन करो। साधु-सन्यासी, सच्चे ब्राह्मण, वीर क्षत्रिय, राजनीतिज्ञ राष्ट्र-नेता, कुशल व्यवसायी सभी के आदर्श मिल सकते हैं। वीर पुरुषों व वीर नारियों के चरित्र विशेष लाभदायी होंगे। वीरवर अर्जुन ने सुभद्रा को चक्रव्यूह में प्रवेश करने की विधि बताई थी, वह गर्भस्थ अभिमन्यु के हृदय-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गई। इससे अधिक अच्छा कौन सा उदाहरण है। फ्रांस का वीरवर नैपोलियन जब माता के गर्भ में था, वह युद्ध के दृश्य बहुत देखती थी। तुम यह स्मरण रखो कि माता के आहार-विहार और विचार तथा चिन्तन अथवा प्रत्येक शारीरिक और मानसिक क्रिया का गर्भस्थ बालक के शरीर व मन पर प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में ज्यादा क्या लिखूँ, तुम काफ़ी समझदार हो।

एक बात कह कर मैं पत्र समाप्त करूँगी। सन्तान-शास्त्र के संबंध में कुछ न कुछ साहित्य अवश्य पढ़ लेना। मैंने तो

यहाँ कुछ निर्देश मात्र किये हैं। तुम दो चार पुस्तकें पढ़ लोगी तो तुम्हें बहुत सी बातों का ज्ञान हो जायगा और अनेक प्रकार के कष्टों से बच जाओगी। इस प्रकार की पुस्तकों से कभी कभी अत्यन्त लाभ हो जाता है। मैं अपनी ही एक घटना सुनाती हूँ। मुझे भी इस संबंध में कोई ज्ञान न था। एक दिन वे दो पुस्तकें ले आये। मैंने उन्हें पढ़ा। दो ही दिन बीते थे कि स्नान करते समय मुझे खून आना शुरू हुआ। मुझे पुस्तक की बात अचानक याद आ गई। मैं चारपाई पर लेट गई, पैरों की तरफ़ के पावों के नीचे ईटें रखकर ऊपर कर लिया। बर्फ़ व ठण्डी पट्टी का उपचार किया। पीछे लेडी डाक्टर ने इस उपचार की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि तुम ऐसा न करतीं, तो संभव था कि गर्भ गिर जाता। और आज कल जहाँ एक दफ़ा यह बीमारी किसी को हुई, वह फिर जल्दी पीछा नहीं छोड़ती। सालों परेशान होना पड़ता है।

माता जी का पत्र आया है। मेरी इच्छा वहाँ आने की है। क्या तुम भी पन्द्रह दिन तक वहाँ आ सकोगी। बहुत दिन से तुम्हें देखा नहीं है। कोशिश अवश्य करना। बहनोईजी को प्रणाम।

तुम्हारी—

शारदा

पण्डित जी के कुछ उपयोगी परामर्श

प्रिय इन्दुरानी,

घर पर माता जी के पास १५-२० दिन कैसे जल्दी बीत गये। वहाँ सब प्रकार का आनन्द था, न कोई घर की चिन्ता थी, और न कोई परेशानी। माता जी का प्यार, पिता का दुलार, भाइयों का स्नेह और तुम्हारा साथ पाने की न जाने कब से उमंग थी, लेकिन इस दुनियाँ में पड़कर अब वह मौज कहाँ? एक दम घर से बुलावा आ गया। ज्यादा दिन रह न सकी। तुम अभी तक वहाँ हो, बहुत अच्छा है। बहनोईजी भी आ गये होंगे। अगर वहाँ दो मास तक रहो तो मैं एक बार फिर आने का प्रयत्न करूँगी। न हो, तो तुम्हीं मेरे यहाँ आ जाओ। मैं पिता जी को भी पत्र लिख रही हूँ। कुछ दिन यहाँ बिता जाओ। तुम्हारा भांजा भी तुम्हें देखकर खुश होगा। आओगी न?

दो एक दिन हुए, मैं पड़ोस में ही एक विवाह में सम्मिलित हुई थी। वहाँ की धूमधाम, रौनक आदि के बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहती। उसमें कोई असाधारणता न थी। लेकिन पण्डित जी ने वहाँ संस्कार के बाद जो उपदेश दिया, उसमें की दो एक बातें मुझे बहुत पसन्द आईं। उन्हें ही इस पत्र में लिखने का विचार है।

मधुर भोजन

मधुपर्क की व्याख्या के प्रसंग में उन्होंने कन्या को संबोधन करते हुए कहा कि अन्य अनेक वस्तुओं की तरह भोजन भी तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजस और तामस। तामस भोजन तो बिलकुल खाना नहीं चाहिए। राजस का थोड़ा बहुत प्रयोग करना चाहिए और सात्विक भोजन का प्रयोग अधिक होना चाहिए। सात्विक भोजन से मेरा अभिप्राय केवल मूंग की दाल और पालक का साग ही नहीं है। मैं दूध और उससे बनी सब वस्तुओं, मलाई, दही, मक्खन, लस्सी और बरफ़ी-पेड़े सब सफ़ेद वस्तुओं को सात्विक मानता हूँ। तुम ने इस संस्कार में मीठे दही का प्रयोग किया है, बस यह दूध और दूध से बनी चीज़ों का प्रतीक है। तुम्हारे पति बाहर से थके-हारे आवें और उनके सामने चाट और मुँह जलाने वाली दूसरी चीजें रख दो, यह अनुचित है। आजकल की स्त्रियाँ वेशभूषा में तो नकल करती हैं मेम साहबों की, लेकिन

भोजन में उनकी तरह से न मुरब्बे लेंगी, न अन्य मीठी वस्तुएँ, मरती हैं इस चाट पर जो स्वास्थ्य को नष्ट करती हैं। दिल को भी कर्कश बनाती हैं। सब्जी में इतनी मिर्चे डालती हैं कि यह पता ही नहीं लगता कि सब्जी घीया कद्दू की है, शलगम की है या आलू की। बस केवल पता लगता है तो मिर्चों के स्वाद का। मिष्टान्त में भी मैं बाज़ार की मिठाई की अपेक्षा दूध की मिठाई को ही पसन्द करता हूँ। इससे स्वास्थ्य कायम रहता है। चित्त प्रसन्न होता है, बोली और दिल में मिठास आती है। चरपरी लाल मिर्च की चीज़ें तथा तेल और खटाई न केवल शरीर को नुकसान पहुँचाती हैं, बल्कि चित्त में भी अपने अनुकूल दुर्गुण पैदा करती हैं और आज प्रायः हर एक गृहस्थी में खिजने और कुढ़ने तथा बदमज़गी के वातावरण को बढ़ाने में हमारे कुरूचिपूर्ण भोजन का भी भाग है।

सम्मिलित भोजन

दूसरी बात भी परिडत जी ने भोजन के बारे में कही थी। वर को संबोधन करके उन्होंने कहा कि तुम ने "नस्तेयमद्मि" की प्रतिज्ञा की है। कभी कोई चीज़ पत्नी से पृथक् होकर मत खाना, वह चोरी है! जो चीज़ लो, घर में ले आओ और पत्नी के साथ बाँट कर खाओ। वस्तुतः एक साथ बैठकर यदि परिवार के सदस्य खावें, तो उस में जो आनन्द आता है, वह

समस्त परिवार में एक सरस जीवन पैदा करता है। भोजन के समय का परस्पर का वार्तालाप सब से सुखद होता है, इसलिए जहाँ तक संभव हो सम्मिलित भोजन की प्रथा डालो। यदि कभी गृहस्थ जीवन में कोई बदमज़गी पैदा हो गई हो, तो वह भी इस प्रकार के सम्मिलित भोजन में बैठकर आपसी गपशप में दूर हो जाती है। उन्होंने इसपर इतना ज़ोर दिया कि इसे पारिवारिक सुख की एक कुँजी बताया।

ससुराल तुम्हारा घर है

तीसरा उपदेश उन्होंने कन्या को यह दिया कि यदि कभी अपने ससुराल में कोई शिकायत हो, तो अपने घर में या दूसरी जगह उसकी चर्चा मत करना। ससुराल तुम्हारा अपना घर है और उसका भेद किसी को न देना ही बुद्धिमत्ता है। ऐसी शिकायतों से तुम यह मत समझना कि केवल तुम्हारे ससुराल वाले ही बदनाम होंगे और तुम नेकनाम होगी। तुम्हारी बातों से लोग यही समझेंगे कि तुम स्वयं कसूरवार हो और और अपना कसूर छिपाने के लिए दूसरों पर कसूर मढ़ रही हो। यदि कहीं तुम्हारे घर वालों को यह मालूम हो गया कि तुम उन की शिकायतें अपने माता-पिता से करती हो तो वे तुम से और भी अप्रसन्न हो जावेंगे। परिवार में और भी क्लेश बढ़ जायगा। अपने घर के भेद को छिपा कर रखने में ही तुम्हारे हृदय की विशालता और महत्ता प्रकट होगी।

सौंदर्य की रक्षा

चौथी बात पण्डित जी ने एक और कही और वही लिख कर इस पत्र को समाप्त करूँगी। पण्डित जी ने कहा, "नारी अपने सौंदर्य की रक्षा करना चाहती है और इसमें संदेह नहीं कि नारी के लिए सौंदर्य की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। यह उसका धन है और आज के समाज में, जब कि पुरुष रूप और सौंदर्य का लोलुप होता है, एक पतिव्रता नारी को भी अपना आकर्षण बनायें रखना ज़रूरी है।" पण्डित जी ने संस्कारमण्डप में बैठी हुई वधू को संबोधन करके कहा, "यह तुम्हारे भाग्य की बात है कि तुम्हें कामदेव सा सुन्दर वर मिला है, लेकिन जिन बहनों को अच्छे—मेरा मतलब सुन्दर से है, वर नहीं भी मिलते, वह भी सुन्दर पत्नी चाहते हैं। नारी भी सदा से अपने सौंदर्य की रक्षा करने का प्रयत्न करती आई है, और आज भी हिन्दुस्तान जैसे दरिद्र देश में करोड़ों रुपए शृंगार व सौंदर्य-सामग्री पर व्यय हो रहा है। बाज़ार में मिलने वाले तरह तरह के तेल, पाउडर, क्रीम, सूज़, नाखूनों व होठों के रंग, कमर या छाती के लिए पेटियाँ तथा तरह तरह के फ़ैशनेबल ज़ेवर व साड़ियाँ आदि न जाने कितनी चीज़ें जिन के नाम शायद तुम मुझ से अधिक जानती होगी, केवल सौंदर्य-वृद्धि के लिए मिलती हैं। लेकिन क्या आज की नारी अपने सौंदर्य की रक्षा कर पाती है ? क्या आज वह कमज़ोर

दुबली-पतली नहीं हो जाती ? क्या एक दो सन्तानें होते ही उसकी जवानी ढलने नहीं लग जाती ? क्या उसके चेहरे का लावण्य उसकी आँखों की चमक कम नहीं होने लगती और उसके शरीर में शिथिलता और कार्य-क्षमता में कमी नहीं आने लगती और इन सब के साथ साथ उसका आकर्षण कम नहीं होता जाता ? इसका कारण यह नहीं कि वह शृंगार-सामग्री का प्रयोग छोड़ देती है। शायद यह तो बढ़ता जाता है। इसका असली कारण है कि वह सौन्दर्य-रक्षा के असली उपाय को नहीं जानती। सौंदर्य की वृद्धि का असली उपाय है अपने शरीर और स्वास्थ्य की रक्षा। जितना शरीर स्वस्थ होगा, उतना ही वह सुन्दर भी होगा। स्वास्थ्य के साथ ही चेहरे की दमक, आँखों की चमक और शान्ति कायम रहती है। इसलिए सब से जरूरी बात यह है कि अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने की अवश्य चिन्ता करो।

स्वास्थ्य के नियम

स्वास्थ्य के नियम तुमने स्कूल में पढ़े होंगे, वे तुम्हें शायद याद भी होंगे। मैं भी दो चार नियम बता दूँ। सब से पहली बात उचित स्वास्थ्यप्रद भोजन की है। मैंने अभी भोजन के बारे में तुम्हें बताया है। मुझे बहुत से घरों में जाने का अवसर मिलता रहता है और यह जानकर आश्चर्य होता है कि स्त्रियाँ दूध पसन्द नहीं करतीं। वे बच्चों को दूध पिला देंगी,

पति को दूध पिला देंगी, लेकिन स्वयं सप्ताह में शायद ही कभी दो एक दफ़ा पाव पाव दूध पीवें। सालों बीत जाते हैं। पहले दूध के न लेने का शरीर पर कोई असर होता नहीं दीखता, जवानी का जोश रहता है, स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन आख़िर पोषकतत्व न मिलने पर प्रकृति तो अपना काम करती जाती है। कुछ साल बीतने पर मालूम होता है कि शरीर अन्दर से खोखला होता जा रहा है, चेहरे की रौनक उड़ती जा रही है, गालों की लाली कम हो गई है, थोड़ी सी सर्दी या गर्मी सहन नहीं हो सकती, पहले जितना काम नहीं होता। जहाँ आकर्षण कम हुआ, उसे बढ़ाने के लिए शृंगार-सामग्री का प्रयोग अधिक होने लगता है। लेकिन काग़ज़ के फूलों से कहाँ तक गंध आयगी? सच्चा सौंदर्य तो शरीर के साथ है। इसके कुपरिणाम और भी बुरे होते हैं। बहुत से पुरुष तो अपने घर के बाहर आकर्षण की खोज करते रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ कार्य-क्षमता के अभाव और दुर्बलता के कारण घर के धन्धे नहीं निबट पाते, फिर बात बात पर खीज आने लगती है, दिमाग़ चिड़चिड़ा होने लगता है और घर भर में अशान्ति मच जाती है। बच्चा रोता है; तो उसे उठाकर चुप कराने का धैर्य नहीं रहता, थप्पड़ लगा दिया जाता है। पति ने कुछ कहा, तो उसे अनसुना कर दिया जाता है या कुछ सख़्त-सुस्त जवाब दे दिया जाता है। घर भर में कुहराम

मच जाता है। पहले तो सुन्दर चेहरे की एक मुसकान पति का दिल जीतने के लिए काफ़ी थी, लेकिन अब न सौंदर्य है और न मुस्कान, अब तो दुर्बलता के कारण चेहरे पर झाइयाँ पड़ गई हैं, चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया है। फलतः बात बिगड़ती जाती है। सुख और हँसी का काम नहीं। घर अशान्ति और कलह का आगार बन जाता है। सन्तान के साथ साथ काम बढ़ता जाता है, परन्तु शरीर कमज़ोर होता जाता है, क्योंकि उसे पोषक तत्व नहीं मिला, फिर दवाइयों के ज़ोर पर स्वास्थ को कायम रखने की चेष्टा की जाती है। मज़ेदार बात यह है कि ज़्यादातर स्त्रियाँ दवा से भी परहेज़ करती हैं। मामूली रोग होगा तो दवा बिलकुल नहीं लेंगी, न कोई प्राकृतिक उपचार करेंगी। बच्चों और पति को ज़रा सा भी जुकाम हुआ तो उनका हृदय वेदना से आकुल हो उठता है और उनकी दवा होने लगती है। लेकिन स्वयं दवा नहीं लेंगी। परिणाम यह होता है कि रोग शरीर में घर करने लगता है। जब वह जड़ जमा चुकता है, तब चिन्ता की जाती है। पर अब काम मुश्किल हो जाता है। कहा है कि आग, ऋण, दुश्मन और रोग को बचपन में ही नष्ट कर देना चाहिए।

तीसरी बात है प्रसन्न रहने की। छोटी छोटी बात पर चिन्ता करने से स्वास्थ्य को सब से अधिक हानि होती है। ज़रा सी बीमारी हुई, ज़रा सा नुकसान हो गया और ज़रा सी किसी से कुछ कहन-सुनन हो गई, बस, चिन्ता से घुलने लगे।

यह बहुत हानिकर है। एक संस्कृत के कवि ने कहा है कि चिन्ता और चिता में चिन्ता ज्यादा खतरनाक है। चिता तो केवल मरे हुए को जलाती है, चिन्ता तो जीवित को ही जलाने लगती है। अपना दिल बड़ा बनाओगी, छोटी छोटी बात पर चिन्ता नहीं करोगी तो उससे स्वास्थ्य को लाभ पहुँचेगा। प्रसन्न चित्त से बढ़ कर स्वास्थ्य की कोई दवा नहीं।

पण्डित जी ने यह सब उपदेश ऐसे आकर्षक ढंग से दिया कि वर वधू का तो पता नहीं, मेरे साथ बैठी हुई अनेक बहनें बहुत प्रभावित हुईं। वे कहने लगीं कि सचमुच, हम अपने स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नहीं देतीं। स्वयं ही अपनी कहूँ। तुम्हारे जीजाजी पिछले छः बरस से दूध के लिए ज़ोर दे रहे हैं और मैं उपेक्षा करती रही। अब महसूस करती हूँ कि मेरे शरीर में अब पहले सा बल नहीं है। थोड़ी थोड़ी सी बात पर खिज जाती हूँ, पहले सी हँसी और खुशी न जाने कहाँ चली गई। आशा है, तुम इन सब बातों का ध्यान रखोगी।

तुम्हारी हितैषिणी

शारदा

पुनश्च:—पिताजी को पत्र लिख रही हूँ। तुम अवश्य आना।

छः बातें

यह पत्र उस दिन नहीं डाल सकी। इन दिनों में श्री सन्त राम की लिखी एक पुस्तक पढ़ रही थी। उसकी कुछ बातें मुझे बहुत अच्छी लगीं, शायद उनसे तुम भी लाभ उठाओगी, इसीलिए संक्षेप से लिखती हूँ। गृहस्थ जीवन की सफलता के निम्नलिखित छः उपाय उसमें बताये गये हैं :—

१—अपने पति पर विश्वास रखो। पति के हृदय में यह बात अंकित कर दो कि वही एक मात्र पुरुष है, जिसे तुम जानती हो। इससे वह भी तुम्हें अपनाने लगेगा।

२—उतावलेपन में या ताना मार कर कोई काम कराना चाहो, तो वह काम कभी पूरा नहीं होगा, उसके बजाय कलह और क्लेश बिना बुलाये ही अवश्य आ जायँगे। इसलिए मृदु स्वर से पति की खुशामद करते हुए उससे कोई बात कहो।

३—रसोई बनाने की प्रवीणता और पति को प्रेमपूर्वक भोजन कराना पति को अपना बना लेता है। यह उसे विमोहित करने का सब से अच्छा उपाय है। भोजन परोसते समय पत्नी को जरूर पास रहना चाहिए।

४—घर में प्रधान बनने की चिन्ता छोड़ दो, क्योंकि वह पद पति का है। स्त्रियों का पति को अपनी अंगुली पर नचाने की चेष्टा करना भारी भूल है।

५—अपना रहन-सहन वैसा ही सरल, परन्तु आकर्षक

रखो, जैसा कि विवाह से पहले था। स्वास्थ्य की रक्षा और उचित मात्रा में शृंगार—दोनों की सहायता से स्त्री जवान बनी रह सकती है। कहावत है:—एक नूर आदमी, दस नूर कपड़ा। सौ नूर गहना, हजार नूर नखरा।

६—कटुभाषिणी मत बनो, यदि जबान चलाओगी, तो पति को खो बैठोगी।

इन छः उपदेशों में बहुत नवीनता नहीं है। मैं इनकी पिछले पत्रों में चर्चा करती रही हूँ। लेकिन एक साथ इन्हें पढ़ कर लिखने की इच्छा हो आई।

शारदा

चिन्ता चिता से भी बुरी है

प्रिय इन्दु बहिन,

एक लम्बा अरसा हो गया। पिछले एक वर्ष पर नज़र डालने लगती हूँ, तो काँप जाती हूँ। कितने कष्ट, कितनी तकलीफ़ें और कितनी परेशानियाँ। कभी पिताजी की बीमारी और स्वर्गवास, कभी तुम्हारे भांजे की लम्बी बीमारी, उससे छुट्टी मिली तो स्वयं बिस्तरे पर पड़ गई। उधर माताजी का कष्ट और इधर घर का अपना कष्ट। माताजी को देखती हूँ, तो दिल काँप जाता है। वह वृद्ध हैं, अपने जीवन-संगी से वह बिछुड़ गई हैं। आखिर कल्पना तो करो, हम दस बीस दिन के साथी से बिछुड़ने पर कितने विचलित हो जाते हैं। जिसके साथ अपनी उम्र के ३५ साल बीत गये हों, जो अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का अभिन्न अंग रहा हो, उस के बिछुड़ने पर— सदा के लिए चले जाने पर, कितना दुःख होता होगा।

आस पास की पड़ोसिनें कहती हैं, माता जी ने अत्यन्त धैर्य से काम लिया है, वह बहुत कम रोयी-धोयीं, उनका दिल था जो सह गया। भले ही वे बहुत न रोयी हों, लेकिन आज तक पिताजी के स्वर्गवास के बाद उन्हें कभी हँसते नहीं देखा, शांति की मूर्ति, न कभी हँसती हैं और न कभी किसी पर क्रुद्ध होती हैं, जो काम हो, अत्यन्त धैर्य के साथ करती हैं। मेरी तो इच्छा ही न होती थी कि उन्हें अकेले छोड़ूँ। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि वह कभी तो हँसें, लेकिन मैं सफल न हो सकी। अपने धैर्य और सहनशीलता से भले ही वह अपने भारी दुःख को प्रकट न करें लेकिन उनके दिल में यह चोट घर कर गई है। तुम्हारा भांजा बीमार पड़ गया—वहाँ का जल-वायु इसे अनुकूल न पड़ा। लाचार होकर अपनी माँ को वहीं छोड़कर घर आना पड़ा। तुम भी तो वहाँ दो बार हो आ चुकी हो। घर आई तो यहाँ भी कष्ट पर कष्ट। बच्चे और मेरी दोनों की बीमारी पर रुपया उन्होंने पानी की तरह बहाया, उन्हें दफ्तर से दो मास की छुट्टी भी लेनी पड़ी। अब जाकर कुछ ठीक हुई हूँ। कमज़ोरी अभी तक कुछ शेष है। न जाने कैसा मनहूस साल था, सोचकर अब भी काँप जाती हूँ। दिल रोने को आता है।

मेरी दशा देखकर वह भी बहुत दुःखी थे। एक दिन रात को कहने लगे, "इस तरह दुःख मनाने से क्या लाभ ? यह तो संसार है, सुख दुःख का नाम ही संसार है, हज़ारों-लाखों

परिवार तबाह हो जाते हैं—एक भी सन्तान जीवित नहीं रहती। एक भी पैसा पास नहीं रहता। मुहल्ले में ही कितने उदाहरण हैं। 'क' के विवाह हुए कितने दिन हुए हैं, विधवा हो गई है, अभी २० साल की उम्र है। 'ख' के दो बच्चे १५ दिनों में ही गुज़र गये। 'ग' की लक्ष्मी जैसी बहू विवाह के चार मास बाद जल मरी। वह बिहारीलाल कितने सज्जन हैं। लेकिन एक एक करके ११ सन्तानें उनकी जा चुकी हैं। तुम्हारी अपनी सहेली प्रकाश है, विवाह को १२ वर्ष हुए हैं, किन्तु ७-८ बार गर्भ रह रह कर गिर चुका है, यही हाल गायत्री का है। वह और उसके पति दोनों कितने सज्जन और धर्मात्मा हैं, रोज़ संध्या-हवन और गायत्री-जाप, लेकिन सन्तान का सुख भाग्य में नहीं है। यह कृष्णगोपाल हैं, बड़े विद्वान। देश को अपना जीवन दान कर चुके हैं। अत्यन्त सज्जन हैं, लेकिन एक भी सन्तान नहीं। लड़की भी गोद ली हुई है। एक और मेरे मित्र हैं, वह भी प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं, पति-पत्नी दोनों भले हैं, लेकिन सन्तान नहीं है। दूर क्यों जावें, तुम अपनी सहेली देवी को ही देख लो। पति थे, तो बच्चा नहीं था। बच्चा हुआ, तो पति दो मास बाद चले गये। बच्चे को देख कर ही जीवन बिता देती। इतना ही दुःख शायद काफ़ी न था—दैव की विडम्बना, भाग्य का विधान, बच्चे का मस्तिष्क ही विकृत है। ११ साल का हो गया है, किसी बात का ज्ञान नहीं। ऐसे ही संसार में कितने उदाहरण हैं। तुम्हारा दुःख तो उनसे

आधा भी नहीं है। परमात्मा की कृपा से बालक और तुम दोनों स्वस्थ हो गये हो, माता जी एक तो वृद्ध हैं, दूसरे तुम्हारे भाई समझदार हैं, माता जी को कष्ट नहीं होने देते। तुम्हारे पिताजी ने भी बीमे आदि की ऐसी व्यवस्था करदी थी, जिस से उन्हें आर्थिक चिन्ता नहीं रही।"

पिताजी की स्मृति से मेरी आँखों में आँसू आ गये। उन्हें पोंछते हुए वह बोले—"पगली हो क्या, पिता किसके सदा जीवित रहते हैं। इतना शोक तो सिर्फ़ तुम्हारे ही स्वास्थ्य को नष्ट नहीं करेगा, तुम्हारे बच्चों और सारे घर पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। तुम देखती हो पिछले कितने समय से सारे घर में मुर्दनी छायी हुई है। अब आगे से हँसा-खेला करो। दिल को खुश रखो, दुःख भूल जाओ। कल छुट्टी है। दिन भर बाग़ में बिताएँगे और शाम को सिनेमा देखकर घर लौटेंगे।"

मैं रात भर उनकी इस सलाह पर विचार करती रही। उनकी बातें ठीक थीं। दुनियाँ है—सुख दुख तो लगा ही रहता है। कोई परिवार ऐसा नहीं है, जो सदा सुखी रहा हो। बचपन में पढ़ी वह कहानी भी याद आ गई, जिसमें महात्मा बुद्ध के पास एक स्त्री अपने बच्चे की लाश लाई थी और कहा था—इसे जिला दो। महात्मा बुद्ध ने उससे कहा था कि एक छटाँक चावल ले आओ, लेकिन ऐसे घर से लाना, जहाँ कोई मर न चुका हो। वह स्त्री बालक के पुनः जीने की आशा में हँसती और दिल में खुश होती हुई कटोरा लेकर

शहर में चली, लेकिन जब तीन घण्टे बाद वापस आई, तब कटोरा खाली था। एक भी घर ऐसा न था, जहाँ कोई न कोई प्रिय या आत्मीय न मरा हो। परन्तु इसके साथ ही उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये थे। उसे पुत्र-शोक नहीं रहा था।

दूसरे दिन मैं सवेरे उठी, नहा-धोकर परावठे बनाये और बच्चों को लेकर बाग़ में गई। वहाँ बच्चे खूब खुश रहे। सिनेमा देख कर रात को लौटे। उस दिन से कुछ हँसी-खुशी में दिन बीतने लगे हैं। घर पर दुःख और शोक की जो घटा सी छायी हुई थी, वह कुछ हलकी हुई है। दरअसल सोचती हूँ, तो मानती हूँ—मेरी ग़लती थी। हर एक परिवार में सुख दुःख आते हैं, इन्हें टाला नहीं जा सकता। मनुष्य में इतना धैर्य और इतनी सहिष्णुता होनी चाहिए कि वह दुःखों और कठिनाइयों को हँसी हँसी झेल ले, इसी में पौरुष है। हमारा इतना बड़ा दिल होना चाहिए कि हम अपने ऊपर आने वाले दुःख को सहन कर लें—फिर वह दुख चाहे आर्थिक हानि का हो, चाहे पास-पड़ोसियों से लड़ाई-झगड़े का हो अथवा प्रियजनों के रोग या वियोग का हो।

यह मैं नहीं कहना चाहती कि हमारा दिल पत्थर का हो जाय, जिस पर संसार के सुख दुःख का कोई प्रभाव ही न पड़े। दुःख सुख का अनुभव तो किया ही जाता है। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती हूँ कि हम किसी दुःख को दिल में लगा न लें,

वह हमारे स्वास्थ्य पर, सारे घर के जीवन पर हावी न हो जाय। हम दुःख को भूलना भी सीखें। यह भूलना भी हमारे लिए आवश्यक है। जो अपने दुःख को नहीं भूल सकता, उसका जीवन सदा दुःखी रहता है। मैं अपनी माता जी (सास) को ही जानती हूँ। उनमें अपनी लड़कियों के प्रति बड़ा मोह था। लेकिन दुनिया की बात कि एक तो आज से बहुत पहले १६१८ में, जब कि सारे देश भर में यूरोपियन युद्ध के बाद इंफ्लुएंजा फैला था, उसी का वह भी शिकार हो गई। शायद तुम्हें उसकी मृत्यु की करुण कथा मैंने सुनाई थी। पतिदेव इंफ्लुएंजा से बीमार थे, एक दिन रात को बाबर की कथा सुनाने लगे कि किस तरह उसने अपने पुत्र हुमायूँ की जान बचाने में अपने प्राण दे दिये थे। पति-परायण बहिन ने यह सुनकर अपना कर्तव्य निर्णय कर लिया—जनवरी की सर्दियों में प्रातःकाल स्नान करके पति की रोग-शय्या के निकट बैठकर सच्चे दिल से प्रभु से प्रार्थना की—अपने पति का रोग अपने ऊपर लेने के लिए। सच्चे दिल की प्रार्थना उस दरबार में स्वीकृत हुई। बहिन चली गई—बाद में उसके दोनों बच्चे भी उपेक्षा के कारण उसी बीमारी के शिकार हो गये। पतिदेव ने चार पाँच मास बाद किसी और को अर्धांगिनी बना लिया। मैं तो माता जी की बात कर रही थी, वे इस दुःख को सँभाल न सकीं, फिर भी अपनी दूसरी लड़की को अपना समस्त प्रेम देकर जीवन पालन

करती रही। १९३२ के दिसम्बर में दूसरी लड़की भी प्रसव-वेदना से चल बसीं। बस, फिर तो उनका बुरा हाल था। दूध उसके बाद उन्होंने नहीं छुआ, उन्हें किसी ने प्रसन्न मुद्रा में नहीं देखा, किसी ने उनकी हँसी नहीं सुनी। हमने उन्हें दिल्ली आने के लिए कितना लिखा, लेकिन एक ही जवाब था कि मेरी लड़की दिल्ली नहीं देख सकी, मैं कैसे जाऊँ? बस, अपनी लड़की के बियोग में घुल-घुलकर छै मास बाद चल बसीं। मैं ऐसे दुःख की बात करती थी। दुःख को दिल में लगा लेना बुरा है, न केवल अपने लिए, बल्कि सारे घर भर के लिए। इसीलिए दुःख को, चिन्ता को भूलना भी आना चाहिए। यदि ऐसा न किया तो परिवार एक नरक के समान दुःखदायी बन जाता है।

अब तो बच्चे के दाँत आने लगे होंगे। कितने दाँत निकले हैं। तुम भी सोचोगी कि तुम्हारी हँसी-खुशी के दिन में कहाँ दुःख, चिन्ता, बीमारी और मौत का झगड़ा मैं ले बैठी। लेकिन क्या करूँ—अपने दिल की तकलीफ़ थी, तुम्हारे सामने निकाल कर दिल हलका कर लिया है। साल भर बाद कुछ लम्बा पत्र लिख सकी हूँ।—यह मनहूस साल बीत गया। फिर मैं यह भी समझती हूँ कि परिवार के सुखी जीवन के लिए अपने हृदय की ऐसी दृढ़ता आवश्यक है। बच्चे को प्यार। बहनोई जी को नमस्ते।

तुम्हारी—
शारदा

पति क्यों खिंचे रहते हैं?

मेरी प्यारी इन्दु बहिन,

अरुण प्रसन्न है, दाँत निकालने वाला दीखता है, यह जान कर प्रसन्नता हुई। दाँत निकलते समय बच्चों को कष्ट होता है। आखिर दाँतों को मसूड़े का चमड़ा फाड़कर बाहर निकलना होता है, किसी बालक का मसूड़ा कुछ सख्त होता है, किसी का मुलायम, लेकिन फिर भी कष्ट सब को होता है; किसी को थोड़ा, किसी को बहुत। इसके लिए पुरानी स्त्रियाँ सोहागा भून कर और शहद में मिलाकर मसूड़े पर मलने की सलाह देती हैं, ज्यादा कष्ट होने पर मसूडे में किसी योग्य डाक्टर से चीरा भी दिलवा दिया जाता है। बालक को इस समय और भी कई कष्ट होते हैं। पेट में दर्द होने लगता है, उलटी होती है, हरे पीले दस्त आने लगते हैं। किसी किसी बालक की तो आँखें दुखने लगती हैं, किसी किसी को बुखार आने

लगता है। इसलिए इन दिनों विशेष सावधान रहने की जरूरत है। माता की जरा सी गफलत से बालक के इस कमजोरी के काल में नुकसान भी उठाना पड़ सकता है। माता को स्वयं अपना स्वास्थ्य और आहार-विहार ज्यादा संयत रखना चाहिए। कभी कभी बालक को हलका रेचन भी दे देना चाहिए।

तुम्हारा पत्र पढ़कर बालक की चिन्ता से भी बड़ी एक और चिन्ता लगी, तुम ने लिखा है—"अजीब हालत है, बच्चे की तबीयत खराब है, उसे जुकाम हो रहा है और इसके साथ हरे-पीले दस्त भी। वह चिड़चिड़ा हो रहा है। रोता रहता है, उसके मारे फुरसत नहीं मिलती। दिन रात और खासकर सवेरे-शाम को तो वह बहुत परेशान करता है। और उधर वह कुछ खिन्चे से रहते हैं। उनका गंभीर चेहरा देखकर कभी कभी काँप जाती हूँ। माताजी (सास) यहाँ हैं नहीं, क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।"

सचमुच मैं तुम्हारी स्थिति की कल्पना कर सकती हूँ, क्योंकि प्रायः प्रत्येक पत्नी को इस स्थिति में से गुजरना पड़ता है। मैंने शायद तुम्हें याद होगा, बहुत पहले लिखा था कि पुरुष चाहता है घर में विश्रान्ति, वह चाहता है कि जब वह अपने दफ्तर, दूकान अथवा और किसी दैनिक काम से थका हुआ घर पहुँचे तो उसे शान्ति मिले, उसकी पत्नी मुस्कराती हुई उसका स्वागत करे, उसके हाथ-पैर धुलावे

और बाद में उसे प्रेमपूर्वक गरमागरम या मौसम के अनुकूल कुछ नाश्ता करावे। पति चाहे कितना बड़ा भी क्यों न होगया हो, काम के बाद विश्रान्ति चाहता है. संसार के झंझटों से दूर अपने स्वर्ग में अपनी प्रियतमा के पास हँसी-खुशी और प्रसन्नता चाहता है। अगर उसे घर में यह नहीं मिलता, तो बस, कुछ नहीं मिलता। फिर वह घर से उदास हो जाता है। वह अत्यन्त अधीर होता है, और यह स्वाभाविक भी है। दुनिया में उसे सैकड़ों तरह की परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, न जाने कितने परिश्रम और कितने घोर संघर्ष के बाद वह अपने और अपने परिवार के लायक कुछ कमा पाता है। तब यदि घर में आकर वह आराम पाने की इच्छा करे, तो यह स्वाभाविक ही है। वस्तुत: प्रियतमा की एक मीठी मुस्कान ही उसके सारे दुःख, सारी परेशानी और सारी थकान को दूर कर देती है और इसीलिए वह दफ़्तर से थका माँदा सीधे अपने घर पहुँचता है। यदि यहाँ भी उसका मधुर स्वागत न हो, कोई उससे हँसकर न बोले, तो उसे कितना दुःख होता है इसकी कल्पना शायद हम स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। ज़रा एक बार सोचो तो, यदि हम अपने किसी मित्र के पास बहुत बड़ी आशा लेकर जावें और वह हमें पानी भी न पूछे, तो हमें कितना दुःख होता है। यही हाल पतियों का है। वे अपने दैनिक जीवन के संघर्ष में थक जाते हैं और इसलिए वे अपनी प्रियतमा से, जिसके लिए वे दिन भर परिश्रम करते

हैं, लोगों से संघर्ष में आते हैं और अपने अफ़सरों के अपमानजनक व्यंगबाण सहते हैं, यह आशा करते हैं कि वह अपनी मीठी मुस्कान, प्यारभरी चितवन तथा मधुर सत्कार से उसकी थकान को दूर करेगी। जब वे देखते हैं कि उनकी पत्नी बालक की वजह से उनकी ओर ध्यान नहीं दे पाती, तो अज्ञात रूप से बालक के प्रति ममता नष्ट हो जाती है और वे बालक को ईर्ष्या की नज़र से देखने लग जाते हैं। यही बालक है जो उनके सुख और आराम में बाधक है। वे शायद नहीं जानते कि वे क्या सोच रहे हैं। वह बालक भी उन्हीं की देन है, लेकिन पुरुष का स्वार्थ भाव बहुत बार विवेक के ऊपर हावी हो जाता है और पिता बालक का प्रतिस्पर्धी बन जाता है।

बड़ी उम्र के आदमियों की यह स्थिति है, तो तुम्हारे पति तो अभी युवक हैं, संसार के सुख और आनन्द को उन्होंने अनुभव ही क्या किया है। मैं समझती हूँ कि उनके खिंचे रहने और गम्भीरता का यही कारण होगा। तुम बालक के मारे परेशान होती होगी और उनकी यथोचित सेवा नहीं कर पाती होगी। इसलिए वह खिजते होंगे। तुम्हारी बात भी ठीक है और उनका खिजना भी स्वाभाविक है।

मैंने शायद बहुत पहले किसी पत्र में लिखा था कि आज की नारी में मातृत्व पर रमणीत्व हावी हो रहा है। आज की शिक्षित नारी मातृत्व का गौरवपूर्ण पद छोड़कर अपने रमणी

रूप के प्रदर्शन की अधिक चिन्ता करती हैं। मैं यह अनुभव करती हूँ कि यह एक दिशा में अति है। इसका यह अर्थ नहीं कि रमणी रूप की उपेक्षा कर देनी चाहिए। एक स्त्री जो माता बन जाती है, उसके दो रूप होते हैं, दो कर्तव्य हो जाते हैं और वे दोनों रूप या कर्तव्य उसके लिए समान हैं, समान महत्वशाली हैं। एक है—माता का और दूसरा है पत्नी का। एक लेखक लिखता है कि "सदियों से संसार में संघर्ष करने और अपनी शक्ति के निरंतर प्रयोग करने के कारण पुरुष का यह स्वभाव हो गया है कि वह बंधन में रखना जानता है, पर स्वयं बंधन में रहना उसने नहीं सीखा। उसके स्वभाव में लेना है, देना नहीं।" ऐसा नहीं कि पुरुष स्नेह करता ही नहीं, वह स्नेह करने लगता है, तो बहुत शीघ्र पागल हो जाता है, देर उसे असह्य हो जाती है, वह स्नेह के लिए प्राण दे सकता है, परन्तु स्त्री की तरह जीवन भर धीरे धीरे तिल तिल जलना उस की प्रकृति के विरुद्ध है। वह एक बार सब कुछ त्याग सकता है, पर उन सब को धीरे धीरे जन्म भर दान करते रहना कठिन है। वह जानता है कि बच्चे की जिम्मेवारी माता-पिता दोनों की है, लेकिन वह स्वयं केवल बच्चे से खेलना चाहता है, बच्चे को रोता देखकर चुप कराने का झंझट वह केवल स्त्री का कर्तव्य समझता है। वह नौकर रख दे सकता है, १०–२०) रु० खर्च कर सकता है, लेकिन स्वयं बच्चे की शुश्रूषा नहीं कर सकता। यह सब झंझट माता के हाथ में सौंपकर भी यह अवश्य

चाहता है कि उसकी अपनी उपेक्षा बालक के कारण न हो। पत्नी यदि बालक की माता है, तो उसकी अपनी पत्नी भी तो है। पुरुष जानता है कि उसकी पत्नी उससे स्नेह करती है। बच्चों के कार्य में व्यस्त रहने के कारण ही उसकी सेवा नहीं कर सकती, लेकिन इतने से उसे संतोष नहीं होता, वह उससे अन्त तक—अधेड़ उम्र तक भी यह आशा करता है कि उसकी स्त्री उसके प्रति अपने स्नेह व प्रेम को बार बार प्रकट करती रहे। "जहाँ वह प्रेम चाहता है, वहाँ स्त्री की भाँति उसका प्रकाशन या विज्ञापन भी चाहता है।" इस के लिए जहाँ वाणी-द्वारा स्नेह प्रकाशन किया जा सकता है, वहाँ सेवा-द्वारा भी ऐसा करना अनिवार्य है।

तुम कहोगी, बात तो ठीक है, लेकिन पुरुष यह क्यों नहीं सोचता कि स्त्री के पास समय नहीं है, शक्ति नहीं है। बच्चा तो नासमझ है, उसकी सेवा आवश्यक है, पति तो थोड़ा-बहुत काम स्वयं भी कर सकता है। वह क्यों नहीं हमारी विवशता को अनुभव करता। तुम्हारा सवाल बिलकुल सही है। यही सवाल हर एक पत्नी करती होगी। लेकिन आदर्श और यथार्थ में सदा अन्तर रहता है। पति को क्या क्या करना चाहिए, क्या सोचना चाहिए, सवाल यह नहीं है। देखना तो यह है कि पति क्या करता है, क्या सोचता है, उसका स्वभाव कैसा है, उसके स्वभाव को बदलना आज आसान नहीं है। इसलिए स्वयं ही क्यों नहीं अपना कार्यक्रम ऐसा बनाया जाय, जिससे

पति की आवश्यकता भी पूर्ण होती रहे और बालक की भी सेवा में त्रुटि न हो। यदि इसके विपरीत हम पति के स्वभाव के बदलने की आशा और प्रतीक्षा करने लगें, तो यह संघर्ष होगा। पुरुष का स्वभाव बदले न बदले लेकिन घर में संघर्ष की संभावना अवश्य बढ़ जायगी। हमें वस्तुस्थिति के अनुसार चलना चाहिए। भारतीय नारी की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वह सदा अपने को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेती है।

साधारणतः किसी घर में स्त्री को समय पर्याप्त मिलता है, वह गपशप या कार्यक्रम की अव्यवस्था के कारण समय का बहुत अपव्यय करती है। उसे यह जानना चाहिए कि भोजन का समय पास आने पर बच्चा तकलीफ़ दे सकता है, इसलिए दिन में ही वह सब्ज़ी मँगा रखेगी, उसे छील रखेगी या काट रखेगी, अथवा पति के दफ़्तर आदि से आने से पहले ही बीच में समय निकाल कर नाश्ते की व्यवस्था कर लेगी, उसके कपड़ों को देख लेगी कि कहाँ बटन लगाना है, कहाँ फिर से सीना है, कल के लिए कौन से कपड़े देने हैं। बच्चा तो दिन में सोता है, उसके कपड़े धोने हों, भोजन की व्यवस्था करनी हो ये सब काम उसी समय किये जा सकते हैं। मतलब यह है कि ठीक ज़रूरत आ पड़ने पर कोई काम करने के बजाय उसकी पहले से चिन्ता कर ली जाय तो बहुत सी समस्याएँ हल हो जाती हैं। घर में ऐसी चीज़ ज़रूर बना रखनी चाहिए, जो नाश्ते के लिए काम आवे, घर में इतने कपड़े अवश्य रहने

चाहिए कि रोज सवेरे क्या पहना जाय, यह सवाल खड़ा न हो, कुछ सवेरे उठने की आदत डालनी चाहिए, तब बच्चा प्रायः सोता रहता है. उस समय घर की सफ़ाई आदि की जा सकती है। जब तुम एक बार अपना जीवन व्यवस्थित कर लोगी, तब तुम्हारे सामने यह प्रश्न नहीं आवेगा। बच्चे के स्वास्थ्य की चिंता भी करनी चाहिए, साधारणतः स्वस्थ बालक यदि उसका ठीक ढंग से पालन किया जाय, तो समय पर सोता है, समय पर जागता है, समय पर टट्टी-पेशाब करता है या दूध माँगता है। जरूरत सिर्फ़ इस बात की है कि तुम अपनी समस्त आवश्यकताओं को हर समय निगाह में रखो और उनके अनुसार अपने जीवन को व्यवस्थित कर लो। चार पाँच दिन तुम्हें कुछ कठिनता अनुभव होगी, फिर तो यह जीवन-क्रम बन जायगा।

यों तुम कभी उनसे बच्चे के अस्वास्थ्य और पति की यथोचित सेवा करने की उत्कट इच्छा की चर्चा कर सकती हो, वे जब तुम्हें इस तरह अत्यन्त कार्य-व्यस्त देखेंगे, तब स्वयं कुछ काम अपने ऊपर ले लेंगे या नौकर की व्यवस्था कर देंगे। वह तो स्वयं समझदार हैं, जरूरत सिर्फ़ इस बात की है कि मौका देखकर अपनी बात कह दो। समय देखकर बात कहोगी, तो उसका असर होगा, बेमौके कही गई बात उलटा असर करती है।

यह पत्र लिखने का मेरा आशय यह है कि पुरुष का जो स्वभाव बन गया है, उससे संघर्ष के बजाय परिस्थिति के

अनुकूल अपने को बना लेने में ही शोभा है।—अन्यथा संघर्ष में तो और अधिक विषम समस्याओं के खड़े होने की संभावना है, कहीं कहीं पुरुष मार्ग-भ्रष्ट तक हो जाते हैं, इससे स्त्री को और भी अधिक कठिनता का सामना करना पड़ता है। मैंने तुम्हें कभी लिखा था कि त्यागमय आत्म-समर्पण में ही मुग्ध है। वही बात दुहरा कर यह पत्र समाप्त करती हूँ। बच्चे के स्वास्थ्य का ध्यान अवश्य रखना।

तुम्हारी—

शारदा

पुनश्च:—यह पत्र कल लिखकर भेज नहीं सकी। आज भेजते समय जब इसे पढ़ा, तो ख़याल आया कि एक बात तो लिखते लिखते भूल गई। पति केवल सेवा नहीं चाहता, वह कार्य तो माता भी कर लेती है। वह पत्नी का मधुर आकर्षण—रमणीय रूप भी चाहता है। चाहे इसे पति की वासना कहो या कोई और बुरा नाम दो, है यह उसका स्वभाव और वह इसे बदल नहीं सकता। आज कल की अत्यन्त फैशनेबल युवती तो मातृत्व की उपेक्षा करती है, उसे मैं पसन्द नहीं करती, लेकिन बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो बच्चों के लालन-पालन और घर के धन्धों में इतनी व्यस्त रहती हैं कि उनके जीवन में सरसता और सजीवता का कहीं दर्शन ही नहीं होता। मेरी एक सहेली है सत्या, पढ़ी-लिखी है, समझदार है, कुछ समय तक कांग्रेस आन्दोलन में काम

कर चुकी है। लेकिन उसके घर जाकर देखो, तो बैठने को दिल नहीं चाहता—उसके अपने कपड़े सदा मैले-कुचैले, छोटे बच्चों के कपड़े भी साफ़ नहीं, बिस्तरे कहीं खुले पड़े हैं और कहीं कोई दूसरे कपड़े—सदा वह घर के काम में उलझी हुई मिलेंगी। ऐसे घर में पति को शान्ति नहीं मिलती। वह चाहता है पत्नी उससे हँस हँसकर बोले—मधुर भाषण करे, प्रेम प्रदर्शन करे और अपना रमणीय रूप रखे। चाहे बहुत फ़ैशन से न रहे, लेकिन कुछ तो अपना आकर्षण बनाये रखे—शृंगार करे। ऐसा न हो कि बाल बिखरे हुए हों, धोती के नाम पर सिर्फ़ पेटीकोट हो या धोती भी हो तो फटी हुई और मैली। ऐसा रूप हो, जो पति की आँखों और चित्त को लुभा ले। आख़िर पत्नी का शृंगार पति के लिए ही तो है। आज कल ऐसा बुरा रिवाज चल पड़ा है कि बाहर जाओ तो शृंगार और सजधज, घर में रहो तो बदहवास और फूहड़ दीखो। बाहर की दुनिया को अपनी ओर ललचाने से तो हानि ही है, अपने देवता न सही, तो अपने एक मात्र जीवन-संगी को ही प्रसन्न करने में घर की शान्ति प्राप्त होती है। सादगी के नाम पर भोंडी या मैली-कुचैली रहना दाम्पत्य प्रेम की जड़ पर कुठाराघात करना है। शायद कुछ ज़्यादा लिखा गई। तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में।

शारदा

कोई सर्वगुणसम्पन्न नहीं होता

प्यारी इन्दु बहिन,

पिछले दिनों जब हम दोनों घर में माताजी के पास थी, मैंने दो एक बातों पर विशेष ध्यान दिया था। सोचा था कि इस संबंध में तुम से बात कर लूँ, लेकिन पिताजी के वियोग और माताजी के दुःख के कारण कोई बात नही कर सकी। आज बैठे बैठे वही बातें स्मरण हो आईं। तुमने एक दिन पुरुषों की रुचि के प्रसंग में शायद कहा था कि वह न जाने क्यों बिना सलाह लिए कपड़े ले आते हैं—मैं लाल रंग के कपड़े बिलकुल पसन्द नही करती, लेकिन एक दिन वह एक धोती ले आये, लाल रंग की किनारी थी और वह भी फटी हुई। किसी और बातचीत के सिलसिले में तुमने कहा था—कि वह अपने कपड़ों की ओर से भी बेफ़िक्र रहते हैं—कपड़ा मैला है, तो वही पहने बाज़ार या दफ़्तर चल दिये, बटन

है या नहीं इसकी फ़िक्र ही नहीं, बूट पैरों में डाला है, तो तस्मा बाँधना भूल गये हैं । स्नान किया है तो कभी कभी बदन तक ठीक तौर से साफ़ नहीं किया। इसी तरह एक और दिन तुमने उनके स्वभाव की चर्चा में कहा था कि वह घर की बातों की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। किसी चीज़ की ज़रूरत आज घर में है, तो वह दस-पन्द्रह दिन तक घर नहीं आयगी; उन्हें स्वयं या मुझे कोई तकलीफ़ है, तो हफ़्तों दवा नहीं करेंगे; मैं कुछ कहती हूँ, तो रुपये फेंक देते हैं, कर लो इलाज; रुपये की कंजूसी वह नहीं करते, लेकिन लापरवाही और आलस्य का अभाव नहीं है; कोई कपड़ा बनवाना है, तो जब कहूँगी तब से दो ढाई महीने से पहले नहीं बनेगा।

इसी तरह की कुछ और बातें भी तुमने बात-चीत के प्रसंग में की थी। मैं यह मानती हूँ कि तुमने ये सब बातें शिकायतों के रूप में नहीं की और न तुमने कोई क्रोध या क्षोभ ही इन बातों पर प्रकट किया, लेकिन फिर भी मैं तुम्हें यह सलाह देना चाहती हूँ कि तुम किसी और से बात चीत के प्रसंग में भी—भूलकर भी अपने पति के इस स्वभाव की चर्चा मत करना। कभी कभी ये बातें किसी और भाव से कही गई होती हैं, लेकिन न जाने कितने भिन्न रूप में ये फैल जाती हैं। एक कवि हैं, बहुत सज्जन हैं। लेकिन कवि होने के कारण कुछ भोलापन, कुछ आलस्य और कुछ अव्यावहारिकता इनके स्वभाव के अंग बन गये हैं। इसके कारण वह

हज़ारों रुपए का नुकसान भी उठा चुके हैं। उनकी पत्नी भी बहुत सुशील हैं। सरल-हृदयता में तो मेरा ख़याल है वैसी सरल और निष्कपट तथा सादी स्त्री मैंने शायद अपने जीवन में नहीं देखी। पति और घर-गृहस्थी में अपना समस्त जीवन व्यतीत कर देती है। पति की अव्यावहारिकता के कारण उसे भी बराबर तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा है। इन कष्टों से कभी कभी वह खिन्न हो उठती हैं और समय समय पर अपने खेद और क्षोभ को प्रकट भी कर देती हैं। यह स्वाभाविक भी है, लेकिन उनके क्षोभ प्रकट करने का ढंग ऐसा है जो मेरी दृष्टि में आपत्तिजनक है। पति के जो घनिष्ट मित्र आते हैं, और जिनसे उनकी बोल-चाल भी है उनके सामने वह अपने पति की अव्यावहारिकता की चर्चा करने लगती हैं। पति से छिपा कर उन की शिकायतों के रूप में नहीं, बल्कि निर्विकार भाव से अपने पति के सामने ही चर्चा करती हैं, लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि उसके पति कभी कभी क्रुद्ध हो जाते हैं। अपने शरीर के फोड़े की चिकित्सा तो अच्छी है, लेकिन उसे सब को दिखाते रहना बुरा है। इसी तरह यदि घर का कोई भेद हो, तो वह भी गोप्य है। मैं जानती हूँ कि उस सरल-हृदया देवी ने अपने पति की अव्यावहारिकता के कारण बहुत कष्ट उठाये हैं, बहुत बलिदान किया है और इस में भी सन्देह नहीं कि वह उनकी सरलता पति-भक्ति और सेवा-भाव ही था, जिस ने

उस परिवार को अत्यन्त दुःख-सागर में डूबने से बचाया, लेकिन फिर भी उनके इस अपूर्व त्याग का गौरव इसी बात में था कि वह अपने पति की दुर्बलताओं और त्रुटि की चर्चा समय समय पर न करती रहतीं। जितना काम किया है, उस का गौरव और उसकी शोभा बार बार उसकी या पति की दुर्बलताओं की चर्चा करने में जाती रहती है। इसका दूसरा परिणाम यह होता है कि पति के मन में जहाँ क्रोध उत्पन्न होता है, वहाँ उससे भी अधिक आत्म-ग्लानि पैदा होती है। और वह यह सोचने के लिए बाधित होता है कि आगे से किसी दुःख में अपनी पत्नी को भागीदार नहीं बनायेगा।

इसी प्रसंग में एक दो और बातें कह दूँ। प्रत्येक पुरुष जैसे यह चाहता है कि उसकी पत्नी सर्वगुणसंपन्ना हो, उसी तरह प्रत्येक स्त्री भी यह चाहती है कि उसका आराध्य देव—उसका पति भी सर्वगुणसंपन्न हो। वह वीर हो, सुन्दर हो, दृढ़, साहसी, परिश्रमी हो, व्यापारी हो, बुद्धिमान हो, सुशिक्षित हो, सदाचारी हो, धनी हो, क्रोध, आलस्य आदि सब दुर्गुणों से रहित हो। लेकिन तुम्हीं सोच सकती हो कि परमात्मा की बनाई हुई भी कोई वस्तु सर्वगुणसंपन्न नहीं है, तो अपूर्ण स्त्री-पुरुष की सन्तान से कहाँ हम यह आशा कर सकते हैं कि उसमें एक भी त्रुटि या दुर्बलता न हो। चंद्र जैसी सुन्दर वस्तु भी निष्कलंक नहीं है। लोग मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र और योगिराज कृष्ण में भी दोष निकालते हैं, तब हमारी-तुम्हारी बिसात ही क्या? अगर तुम

दोष-दर्शन की दृष्टि से देखोगी, तो शायद संसार का एक भी महापुरुष पूर्ण निर्दोष नहीं दीखेगा। कोई त्यागी महात्मा है, तो वह सद् गृहस्थ और आदर्श पति होने के अयोग्य है। यदि कोई वीर, साहसी और परिश्रमी है, तो उसमें शान्ति और गंभीरता का अभाव है। इसलिए प्रत्येक स्त्री और पुरुष को यह सत्य हृदयंगम कर लेना चाहिए कि कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं है, इसलिए उसका जीवन-संगी भी पूर्ण नहीं है, किसी न किसी त्रुटि से युक्त है। ग्लेडस्टन इंगलैंण्ड का एक प्रसिद्ध प्रधान मंत्री रह चुका है। उसमें यह स्वभाव था कि जहाँ जाता, वहाँ से आते समय, पैंसिल, घड़ी, चम्मच या कोई और वस्तु जेब में ले आता। उसकी पत्नी अपने पति की इस कमजोरी को पहचान गई। वह पति के घर आने और कोट उतारने के बाद जेब टटोलती और वह चीज उसके स्वामी को वापस करती। तुम अपने को देखो, मुझे देखो, अपने आस-पास के कुटुम्बियों को देखो, तुम्हें सब में कोई न कोई त्रुटि अवश्य मिलेगी, इसीलिए यह आवश्यक है कि त्रुटि और दोषदर्शन की अपेक्षा हमारा ध्यान उसके गुणों पर ही जाना चाहिए। इसी पत्र में मैंने ऊपर दो उदाहरण दिये हैं, एक बहनोई जी और एक हिन्दी के उन प्रसिद्ध लेखक का। दोनों में ही व्यवहार-शून्यता और आलस्य दीखते हैं, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनका हृदय किसी तरह तुच्छ या क्षुद्र है। ये संसार में और उसकी ऊपरी बातों में उतने लिप्त नहीं हैं, जितने दूसरे

आदमी। उनमें छलछिद्र का अभाव है, कुछ ऐसे अवसर भी आवेंगे, जब तुम देखोगी, उनका हृदय और भी अधिक महान् हो गया है, यदि वे घर से बाहर व्यावहारिकता का परिचय नहीं देते, तो शायद तुम से भी आडंबरपूर्ण व्यावहारिकता की आशा नहीं करते होंगे। फिर एक बात है कि एक या दो दुर्बलताओं के कारण ही तो उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। उसके सुन्दर गुणों की ओर ध्यान दो, तो तुम जैसा कोई सुखी नहीं। संतोष ही परम सुख का मूल है।

एक कहावत है, अपनी बुद्धि और पराया धन सदा बड़े मालूम होते हैं। यह कहावत केवल रुपये-पैसे पर ही नहीं अपने पति-पत्नी पर भी लागू होती है। विवाहित जीवन के प्रथम दो तीन वर्ष—यौवन और प्रेमल उमंगों के वर्ष—बीत जाने के बाद जब प्रेम की लहर कुछ कम होने लगती है, तब एक दूसरे के दोष सामने आने लगते हैं। पहले यदि पत्नी के हाथ से कुछ आटा गिर जाता था, तब पति उसके अल्हड़पन और भोलेपन पर हँस लेता था। और अब वही अल्हड़पन उसे फूहड़पन लगने लगता है। इसी तरह पहले पत्नी पति की अव्यावहारिकता को भोलापन समझती थी, अब वह मूर्खता समझने लगती है। आपस में किसी छोटी सी बात पर तनातनी हो जाती है, कड़वे बोल निकल पड़ते हैं। एक दूसरे के छोटे-छोटे दोष वृहदाकार धारण करके सामने आने लगते हैं और अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति

असंतोष प्रकट होने लगता है। इस समस्त कांड में अपना दोष ही कहीं नजर नहीं आता। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तब पत्नी अपनी सहेलियों के जीवन को देखने लगती है और सोचती है कि उनका जीवन कितना सुखी है, वस्तुतः उनके पति ही अच्छे हैं। वह अपने पति के आगे उनके गुण गाने लगती है और यह वह दूसरी बड़ी भूल करती है। जिस तरह कोई स्त्री अपने पति के मुख से किसी दूसरी स्त्री की बड़ाई बरदाश्त नहीं कर सकती, उसी तरह पति भी अपनी पत्नी के मुख से किसी दूसरे पुरुष की बड़ाई सुनना पसन्द नहीं करता। कभी कभी तो वह यहाँ तक कह देता है कि फिर जाओ, उसी के पास रहो, बात और भी अधिक बिगड़ जाती है।

कोई पर-पुरुष भी पराया धन है। उक्त कहावत के अनुसार ही वह बड़ा दीखता है। दर असल तो घर घर मिट्टी के चूल्हे हैं। हर एक आदमी अपने घर के दोषों को छिपा कर रखने का प्रयत्न करता है, इसीलिए वे हमारे सामनेनहीं आते, हमारे सामने आता है उसका केवल उज्ज्वल रूप, उसकी हँसी खुशी, उसके मैले कपड़े भी ऊपर के दूध से धुले कपड़ों से छिप जाते हैं और हम उसे ही उसका असली स्वरूप समझने लगते हैं। जिस तरह 'क' अपनी सहेली 'ख' के पति को अच्छाइयों से पूर्ण समझती है, उसी तरह यह भी बहुत अधिक संभव है कि 'ख' भी अपने जीवन की अपेक्षा 'क' के घरेलू जीवन को ईर्ष्या की

दृष्टि से देखती हो। बात यह है कि एक व्यक्ति मे एक दुर्बलता है, तो दूसरे में कोई दूसरी दुर्बलता। अंग्रेजी में एक कहावत है—मनुष्य है ही भूल करने के लिए।

यह भी कोई आवश्यक नहीं कि जिसे मैं दुर्गुण समझती हूँ, वह वस्तुतः दुर्गुण ही हो। संभव है कि वही स्वभाव दूसरे को गुण मालूम होता हो। अभी मैं बंगला से अनूदित एक कहानी पढ़ रही थी। उसका शीर्षक था—"पति ही सदा अपराधी होता है।" शैलबाला अपने पति से शिकायत कर ही थी कि तुम्हें घर बैठना ही पसन्द नहीं है, दफ्तर से आते हो तो अपने मित्रों के यहाँ चले जाते हो, रात को भोजन किया और फिर बाहर, पड़ोसी दिवाकर को तो देखो सदा घर पर रहते हैं; पत्नी और पति मज़े में घर पर हँसते खेलते और आनन्द-पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। शैलबाला का पति घर रहने का निश्चय करना चहता है, उसी समय पड़ोस से एक स्त्री-पुरुष के परस्पर झगड़े की आवाज़ सुनाई देने लगती है। मालूम होता है कि दिवाकर की पत्नी अपने पति से कह रही है कि क्या है तुम्हारी आदत—हमेशा घर पर ही पड़े रहते हो। ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम्हारे कोई संगी-साथी नहीं है, सदा घर पर रहने से तुम्हारा स्वास्थ्य और आकर्षण कम हो गया है। देखो तो शैलबाला का पति कैसे मज़े से हैं, कितने संगी-साथी हैं, चेहरे पर कितनी रौनक है, जीवन में कितने प्रसन्न दीखते हैं। यह सुनकर

शैलबाला के पति ने सोचा कि न मेरी पत्नी ग़लत कहती है, न शैलबाला, पति सदा ही अपराधी होता है। यह है कहानी, लेकिन इसमें एक सचाई है। अपनी स्थिति से सदा असंतोष की भावना प्रायः हम सब में है और इसीलिए हम अपने पति में दोष निकालते हैं तथा अपनी पड़ोसिनों के जीवन को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं।

एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं, उनका स्वभाव बहुत ही मधुर और सहानुभूतिशील है, देश-सेवा की लगन है, हज़ारों आदमी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं, स्थान स्थान पर उनका सम्मान होता है। बहुत सी स्त्रियाँ उनकी पत्नी को ऐसा साधु और सम्मानित पति पाने के लिए ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं, लेकिन उस के दिल का हाल मैं ही जानती हूँ। एक दिन वह खुल पड़ी। कहने लगी—"क्या बताऊँ, जब मैं अपनी पड़ोसिनों को अपने आदमी और बाल-बच्चों में प्रसन्न देखती हूँ, तो चित्त प्रसन्न हो जाता है, उनके आदमी हैं, कभी घर के लिए साड़ी ला रहे हैं, कभी कोई छोटा-मोटा ज़ेवर, कभी मिठाई या फलों की टोकरी और कभी बच्चों के लिए खिलौने। लेकिन वह कुछ नहीं, मैं साड़ी ज़ेवरों की शौकीन नहीं हूँ, इनकी कामना तो तभी छोड़ दी थी जब विवाह किया था। खद्दर ही मुझे पसन्द है, लेकिन यह दिल तो होता है कि वह कभी कभी दो चार पैसे की चीज़ ही बाज़ार से लाकर देते रहें। पर हाल यह है कि कभी किसी सभा में सभापति बनना है तो, कभी

कहीं चरखा-प्रदर्शिनी का उद्घाटन करना है, कभी उनका जलूस निकल रहा है, तो कभी वह किसी महान् सार्वजनिक सभा का आयोजन करने में लगे हैं और कभी कभी एक डेढ़ वर्ष के लिए जेल में रह रहे हैं। परिवार का सुख ही नहीं। कभी कभी सोचती हूँ कि इससे तो अच्छा यही था कि विवाह ही न करती। मुझसे तो वह किसान स्त्री ही भली, जिसका पति सदा उससे हँसने-बोलने का समय पाता है। ये सब बातें उसने इतने करुण ढंग से कहीं कि मेरा दिल पसीज गया। मैंने उसे ढाढ़स दिया। पर मन में सोचा कि कोई व्यक्ति अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं है और यही हमारे दुःख का कारण है।

मैं इस पत्र में यही कहना चाहती थी कि हर एक पुरुष में कोई न कोई दोष होता है। इसलिए नारी का कर्तव्य है कि जहाँ उसे दूर करने का शान्त प्रयत्न करे, वहाँ उसी के कारण अपने मन को उद्विग्न न कर ले। शराब, जुआ और व्यभिचार ये तीन दुर्गुण तो ऐसे अवश्य है, जो घर की शान्ति को नष्ट कर देते हैं, शेष त्रुटियों का सुधार करते हुए भी उनकी उपेक्षा की जा सकती है। या कम से कम उनके कारण अपने को सदा उद्विग्न और दुःखी मानने की आवश्यकता नहीं।

मुझे फिर यह भय है कि मेरा पत्र कहीं अधिक लम्बा हो गया है। लेकिन तुम्हें पत्र लिखते समय एक विशेष प्रकार का सुख और संतोष होता है, मानो मैं अपनी छोटी बहन से बात-चीत कर रही हूँ और यह समय जितना अधिक हो, उतना ही

आनन्द आता है। अरुण के कितने दाँत निकल चुके हैं। बहनोई जी को नमस्ते।

तुम्हारी

शारदा

जितनी चादर, उतने पैर पसारो

प्रिय इन्दु बहिन,

पिछले दिनों मैं नई दिल्ली गई थी। उनके एक घनिष्ट मित्र का बार बार आग्रह था। मैं शायद न भी जाती, पर वह कई बार अपने उस मित्र की प्रशंसा कर चुके थे कि साधारण सी आर्थिक स्थिति के होते हुए वह सदा प्रसन्न रहते हैं। उनकी घर वाली न जाने थोड़ी सी आमदनी में अपने परिवार का समस्त व्यय किस तरह चला लेती है। मैं ऐसी चतुर गृहिणी के दर्शन अवश्य करना और हो सके तो कुछ सीखना भी चाहती थी।

मैं वहाँ जाकर दंग रह गई। उनका छोटा सा क्वार्टर था; क्वार्टर क्या था, सिर्फ दो कमरे उनके पास थे, परन्तु कितने व्यवस्थित, घर में कहीं कूड़ा नाम को नहीं, प्रत्येक वस्तु अपने यथास्थान रखी हुई। सामान की कमी न थी, परन्तु सब ऐसी

तरकीब से रखा हुआ था कि उठने-बैठने के लिए स्थान खाली था। ट्रंक एक के ऊपर एक रखे हुए, पर साफ़ कपड़े से ढके हुए। बड़ा पलंग है, तो शेष दो चारपाइयाँ उसके नीचे। मालूम हुआ कि स्थानाभाव के कारण ही ये चारपाइयाँ ख़ास तौर पर इतनी बड़ी बनवाई गई हैं कि पलंग के नीचे आ सकें। एक छोटी सी टेबल और दो फोल्डिंग कुर्सियाँ। एक ओर कनस्तरों में रसोई का सामान है, जो शायद सारे महीने के लिए काफ़ी है और दो तीन दिन हुए आया है। भोजन भी हम ने वहीं किया, भोजन में गरिष्ठ वस्तुएँ तो न थी, पर सात्विक स्वादु भोजन था। एक दाल और एक सब्ज़ी तथा चटनी। भोजन के बाद वह तो अपने मित्र के पास जा बैठे और मैं उनकी पत्नी के पास। बहुत सी बातें हुईं, परन्तु उनकी गृहस्थावस्था के बारे में जो बातें ज्ञात हुईं उनका सारांश यह है।

उन्हें ५०) रु० मिलता है। इस में से ५) रु० तो बीमे में चला जाता है, ८) रु० वे प्रति मास बचाते हैं। ३०—३५) प्रति मास भोजन व दूध का व्यय है—६) रु० के क़रीब कपड़ों पर व्यय होता है, शेष ८) धुलाई तेल साबुन तांगा आदि फुटकर व्यय होता है—३) रु० बच्चों की फ़ीस के लग जाते हैं, ६) रु० किराया मकान भंगी आदि पर। इस में कभी कभी एक दो रु० का व्यय कमोबेशी होता है, तो उसका असर बचत

पर पड़ता है ।* साल में कुछ महीने वह ट्यूशन करते हैं, उससे भी १००—१२५) रु० प्रति वर्ष मिल जाते हैं, हम यह प्रयत्न करते हैं कि असाधारण आवश्यकता के बिना उसे व्यय न किया जाय, क्योंकि न जाने कब कैसा समय आ जाय । फिर बच्चों की पढ़ाई और विवाह की भी तो चिन्ता है ।"

आखिर इतने मितव्यय से वे किस तरह काम चला लेती हैं, यह पूछने पर उन्होंने कहा—"हम ने अपने रहन-सहन का आदर्श रखा है सादगी और सफ़ाई । यह आदर्श रखे बिना गुज़ारा भी तो नहीं चल सकता । फिर मैं स्वयं हाथ से काम करने में कुछ अनुचित बात नहीं देखती । आजकल नौकर बहुत महँगा रहता है, वह न केवल वेतन लेता है, बल्कि वह घर के काम-काज और रसोई में भी लापरवाही के कारण बहुत कसी चीज़ें बरबाद कर देता है । अँगीठी जल रही है, तो कोई चिन्ता नहीं, आटा अभी गूँदेगा, आटा-दाल या सब्ज़ी ज़रूरत से ज्यादा पकने के कारण खराब जाता है । सब्ज़ी महँगी लाना या स्वयं पैसे खा लेना तो साधारण सी बात है । धोबी के पास जाने वाले कपड़े जल्दी फटते हैं । इसलिए मैं सिर्फ़ वही कपड़े धोबी को देती हूँ जो घर पर नहीं धुल सकते । कोट, निकर या पतलून के सिवा सभी कपड़े घर पर सी लेती हूँ । मैंने सैकण्ड हैण्ड मशीन ८०) रुपये में ली थी, आज ८ साल हो गये । यदि हिसाब लगायें, तो २००) रुपये की सिलाई कम से

* यह बजट युद्ध से पूर्व काल का है ।

कम कर चुकी हूँ। साबुन कई दफ़ा घर पर बना लेती हूँ। वह बाजार से कोई ख़ास सस्ता तो नहीं पड़ता, लेकिन कपड़े जल्दी साफ़ करता है। महीने की ज़रूरी चीज़ें एक साथ मँगा लेती हूँ, तो मज़दूरी व ताँगे में एक-दो रुपए बच जाते हैं। सिनेमा का व्यसन मुझे नहीं है। महीनों बीत जाते हैं, पर मैं सिनेमा नही देखती। यह व्यसन अमीरों के लिए ही शोभा देता है। घर में कोई चीज़ तैयार रखती हूँ, जो नाश्ते के काम आती है। समय समय पर बाज़ार से मिठाई महँगी पड़ती है। और चीज़ भी नुक्सानदेह होती है। चाट का शौक भी हमने नही लगाया। कभी इच्छा हुई, तो अमरूद केले आदि की चाट घर पर बनाली अथवा पकौड़े घर पर बना लिये।

अपनी पड़ोस की औरतों को देखकर क्या आपके हृदय में तरह तरह की इच्छायें पैदा नहीं होतीं, यह पूछने पर वह बोलीं, "क्यों नही, आख़िर हम वीतराग देव तो हैं नही, लेकिन जब ऐसे ख़याल पैदा होते हैं, तब मैं उन लोगों का भी ध्यान करती हूँ, जिनकी आर्थिक स्थिति हमसे भी हीन है, तब मंगलमय भगवान को धन्यवाद देकर उन इच्छाओं को दबा देती हूँ। बड़ाई की बात नहीं करती, पड़ोस के घर का रहन-सहन हमसे अच्छा नहीं है। १००) रुपए पाते हैं, पर फिर भी एक पैसा नहीं बचा पाते। पड़ोसिन रोज़ पैसे की कमी की शिकायत करती है, लेकिन वह कोई काम स्वयं नही करतीं। मैं तो

समझती हूँ कि मितव्ययता कमाई का दूसरा नाम है। जितना खर्च मैं स्वयं काम करके बचा पाती हूँ, उतनी हमारी आमदनी ज्यादा समझिये। मैं स्वयं काम-काज के द्वारा ३०—३५) रुपए से अधिक मासिक बचा लेती हूँ, अर्थात हमारी आमदनी ७०) नहीं, १००) रु० है। ७०) रु० वह कमाते हैं और ३०) रु० मैं।

बातें तो उस सुगृहिणी से बहुत हुईं, लेकिन उनका मुख्य आशय यही था। उस दिन लौटी तो मेरे चित्त में एक प्रसन्नता थी, मानो, एक नई दुनिया देख आई हूँ। मितव्ययता के और भी उदाहरण मैंने देखे हैं। पैसे को दाँत से पकड़ कर चलने वाले मक्खीचूस कंजूस भी मैंने देखे हैं। दो ढाई सौ आमदनी के होते हुए भी मैले-कुचैले फटे-पुराने कपड़े पहनने वालों की कमी नहीं है। बच्चों को एक एक पैसा खर्च करने के लिए डाँटनेवाले, घर में अतिथि के नाम से पानी भी न पूछने वाले मेरी आँखों में हैं, लेकिन ऐसा घर मेरे लिए नया था, जो इतनी सीमित आय होते हुए भी पूर्णतः व्यवस्थित हो, रहन-सहन का स्टैण्डर्ड ठीक हो, भविष्य की भी चिन्ता हो। बस, यही तो सुगृहिणी का कर्तव्य है। दोनों पति-पत्नी प्रसन्न हैं। किसी विशेष अभाव का अनुभव नहीं करते।

परिवार की समस्याओं में आर्थिक प्रश्न का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसकी उपेक्षा करने से अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, जिनके कारण समस्त जीवन संकट-

मय हो जाता है। आखिर जीवन में भोजन, कपड़ा-लत्ता, मकान और बच्चों का पालन-पोषण व दीक्षा आदि सभी तो आवश्यक हैं। मनुष्य कितने दिन भूखा रह सकता है या बिना कपड़ों के गुजारा कर सकता है। यह संसार केवल कोमल भावनाओं और गुद-गुदी पैदा करने वाली लहरों और काव्यरस की मधुर कल्पनाओं की दुनिया नहीं है। इसमें तो जीवन के व्यावहारिक प्रश्न बिलकुल कठोर और निर्दय रूप में हमारे सामने आते जाते हैं। बीसियों ऐसे घर हैं, जिनमें केवल रुपये की कमी के कारण दिन-रात कलह रहता है। परन्तु तुम्हें यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि अव्यवस्था और अनियम के कारण रुपये की कमी की अपेक्षा भी अधिक घरों में असंतोष व कलह रहता है। बात यह होती है कि लोग यह नहीं सोचते कि उनकी कितनी आमदनी है और कितनी जिम्मेवारियाँ हैं। बस, वे पहले अनुभव-शून्यता के कारण खर्च किये जाते हैं, लेकिन पीछे जिम्मेवारियाँ बढ़ने के साथ साथ उनमें असंतोष होता है, किसी चीज की घर में फ़र्मायश होती है, पैसा नहीं होता और फिर घर में झंझट पैदा हो जाते हैं, खीज और चिड़चिड़ापन, विवाद और कलह—घर नरक बन जाता है।

गृहस्थी और पारिवारिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आमदनी के अनुसार अपने खर्चों का एक बजट बना लिया जाय। साधारणतः

निम्न लिखित व्यय हुआ करते हैं।

१—भोजन और दूध

२—कपड़े

३—मकान

४—बच्चों की शिक्षा

५—रोग-चिकित्सा

६—साबुन, तेल, खिलौना, तॉगा आदि फुटकर

७—सामाजिक लेन-देन, चन्दा और घरेलू संस्कार

८—आकस्मिक असाधारण व्यय तथा

९—भविष्य और बुढ़ापे के लिए आवश्यक बचत।

यों तो इन मदों पर जितना चाहो, खर्च कर लो, लेकिन सबसे बड़ा सवाल है आमदनी का। "जितनी चादर उतने पैर पसारो" की कहावत वस्तुतः सुवर्ण अक्षरों में लिखी जानी चाहिए। सामाजिक प्रतिष्ठा को भी रखना आवश्यक है, लेकिन झूठी सभ्यता और फैशन के गुलाम बन जाने के कारण अपनी हैसियत से अधिक खर्च मत करो। अधिकांश बाबू श्रेणी के लोग कपड़ों पर, चाट, सिनेमा और सिगरेट पर इतना अधिक खर्च कर देते हैं कि अनेक अनिवार्य व्यय रुक जाते हैं। साफ़ सादे कपड़े और साधारण शृंगार-सामग्री से बहुत से खर्चों से हम बच जाते हैं। सिनेमा, सिगरेट और चाट का व्यसन न हो तो हम बचत कर सकते हैं। स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए हम चिकित्सा के भारी बोझ से बच जाते

हैं। साधारण घरेलू चिकित्सा सीख लें, तो डाक्टरों पर होने वाले भारी व्यय को हम बचा सकते हैं। अपने घर के संस्कारों पर हम अपनी हैसियत के मुताबिक खर्च करें, तो अच्छा होगा। जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ पहली चीज़ है, शेष आडम्बर, शान-शौकत तथा आरामपसन्दी या मनोरंजन की चीज़ें पीछे। इस गुर को यदि हम समझ लें, तो बहुत सी तकलीफें दूर हो सकती हैं। अभी तो यदि हम बाज़ार जाते हुए कोई सुन्दर सी चीज़ देखते हैं, तो लेने की इच्छा हो जाती है, फिर भले ही वह बहुत काम की न हो। कोई चीज़ लेने से पहले चार बार यह सोच लो कि उसके बिना काम चल सकता है या नहीं।

हम स्त्रियों में—यूरोपियन स्त्रियों का मुझे पता नहीं—एक और गन्दी बीमारी होती है। घर में दस साड़ियाँ पड़ी होंगी, लेकिन यदि एक पड़ोसिन किसी नये डिज़ायन की साड़ी या ज़ेवर लाती है, तो हम भी वैसी ही साड़ी या ज़ेवर लेने के लिए अपने आदमियों से तकाज़े शुरू कर देती हैं, भले ही हमारे पास उस डिज़ायन से अच्छी चीज़ पड़ी हो। एक पड़ोसिन ने एक खास तरह का कसीदा काढ़ा है, हम भी उसी डिजायन की एक और चादर काढ़ने के लिए चादर व डी एम सी का तकाज़ा करने लगती हैं। उसके यहाँ कुर्सी है, मेज़-पोश है, दरवाज़े के पर्दे हैं, तो हम कहेंगी बस हमें भी चाहिएँ, यह नहीं सोचती कि पड़ोसिन की आमदनी हम से दुगनी या

तिगुनी है। अपने से अधिक संपत्तिशाली से ईर्ष्या और डाह करके उस की नकल करने की भावना से सदा नुक्सान रहता है। मेरी एक सहेली है, साधारणतया समझदार है, देखने भालने में भी अच्छी है। लाहौर में चोबुर्जी के कार्टरों में रहती है—सरकारी कार्टरों में, किसी क्लर्क से मकान किराये पर ले रखा है। उस के पति अत्यन्त सभ्य हैं, सज्जन हैं, सदा हँसमुख। वह उनकी बहुत प्रशंसा करते हैं। एक स्कूल में अध्यापक हैं—७०—८०) रु० मिलता है। किसी तरह मुश्किल से गुजारा चलता रहा। लेकिन सहेली पर सरकारी नौकरों की फैशनपरस्त व आराम-पसन्द सोसायटी का रंग चढ़ने लगा। मेरी सहेली ने पहले मेजपोश काढ़ने का निश्चय किया, फिर दरवाजों के लिए रंगीन परदे आये, सवेरे शाम घूमने रेशमी साड़ियों की फरमायश हुई। सहेलियाँ सिनेमा जाती हैं, तो यह कैसे उनके अनुरोध पर इन्कार करे—शर्म न आयगी, हेठी न होगी। सब पड़ोसिनें पतियों के दफ्तर जाने पर धूप में आकर बैठ जाती हैं, जब कि उनके नौकर काम करते हैं। तो एक दिन पतिदेव से जब वह स्कूल के समय के बाद ही ट्यूशन करके थके-मांदे घर में आये, तकाजा किया कि नौकर रखे बिना काम नहीं चल सकता। बेचारे पतिदेव अजब परेशान, घर के खर्च नहीं चलते, दो बड़ी लड़कियाँ कुमारी बैठी हैं उनके लिए वर चाहिएँ। दो दो चार चार हजार रुपए के शादी के भारी खर्च सिर पर आ रहे हैं, जो एक रुपया

बच जाय, अच्छा है। समझाने पर बोली—'क' के घर नौकर है, 'ख' ने भी एक लड़का रखा हुआ है, 'ग' के यहाँ तो कहारी के अलावा नौकर भी है, आदि आदि। नौकर रखा गया है, दस रुपए वेतन है, १५) रु० की रोटी खाता है अपनी गफ़लत से १०—१२) रु० का और व्यय कर देता है, बेचारे पतिदेव हैं, नौकर का खर्च निकालने के लिए रात के ग्यारह बजे तक ट्यूशन करते हैं। स्त्री प्रसन्न है, अब वह पड़ोसिनों से किस बात में कम है? पति काम करते हैं, वो क्या है, उस का काम ही कमाना है, नहीं तो क्यों ब्याह कर लाये थे। दो लड़कियाँ जवान हैं, उनके विवाह का प्रश्न उठता है, कहती हैं कि अपने जैसा कोई स्कूल मास्टर मत चुनना, जिस की कभी वेतन-वृद्धि ही न हो, जिसकी कोई ख़ास इज्ज़त ही न हो। लड़कियाँ भी अपने पिता की यह आलोचना, सुनती हैं तो पिता के प्रति उनका आदर-भाव लगातार कम होता जा रहा है। ६०—७०) रु० कमाने वाला कहाँ २००) रु० आमदनी वाले युवक की दहेज की माँग पूरी कर सकता है, इस ओर उस का ध्यान ही नहीं। घर में रोज़ कलह है, संकट है, पतिदेव का सारा स्वास्थ्य, सारी प्रसन्नता और समस्त जीवन का रस नष्ट हो चुका है। कभी कभी सोचते हैं कि घर-बार छोड़ कर संन्यासी हो जाऊं या यह दुनिया ही छोड़ जाऊँ, लेकिन फिर कर्तव्य-बुद्धि जागृत हो जाती है और कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात काम में जुट

पड़ते हैं। इन सब का मूल कारण पत्नी का वह ईर्ष्या-भाव है जो दूसरे पास के पड़ोसियों को देखकर उसके हृदय में घर कर गया है और उनकी नकल करने की इच्छा पैदा हो गई है। उसने अपनी आमदनी का खयाल नहीं रखा।

एक वह सुगृहिणी थी, जिसने पति की कमाई में स्वयं कष्ट उठाकर वृद्धि की और एक यह है, जो पति पर निरंतर भार बन रही है। इसे न अपने भविष्य की चिन्ता है और न अपनी संतान के। भविष्य की चिन्ता के बारे में मैं पहले भी पत्र लिख चुकी हूँ, बजट बनाते समय उसका अवश्य ध्यान करना चाहिए। बुढ़ापे में अपनी संतान पर निर्भर रहना एक भारी अदूरदर्शिता है। आज कल के युवकों में कर्तव्य या श्रद्धा की भावना भी कम होती है, लेकिन इसके साथ वे स्वयं भी आर्थिक चिन्ता से मुक्त नहीं होते, उनसे उनकी नई घर-गृहस्थी चलाने का ही पूरा खर्च नहीं उठता, माता-पिता को कहाँ से दें। इसलिए स्वयं ही बचत के इस महत्त्व-पूर्ण अंग की ओर ध्यान देना चाहिए।

मुझे भय है कि मितव्ययता पर मैं पहले भी कई बार लिख चुकी हूँ और उसे बार बार दुहरा रही हूँ। लेकिन पारिवारिक जीवन में इसका इतना अधिक महत्त्व है कि इस पर हमें सदा

ही ध्यान रखना होगा।

अरुण अब तो अंगुली पकड़कर चलता होगा। सर्दियों के दिन हैं, ज़रा ख़याल रखना। बहनोई जी को नमस्ते।

तुम्हारी हितैषिणी

शारदा

गर्भ-स्राव पाप है : संयम का महत्व

प्रिय बहिन,

तुम्हारे पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम एक दूसरी संतान की माँ बनने जा रही हो । तुमने इसे झंझट कहा है, परन्तु यह तुम्हारी भूल है । यही मातृत्व तो नारी का वास्तविक रूप है । वह रमणी है, पत्नी है, परन्तु माता का पद इन सब से महान् है ।

इस संबंध में एक बात तुम्हें लिखते संकोच तो होता है, लेकिन वह अत्यन्त आवश्यक है। जल्दी मिलने की कोई संभावना नहीं, इसलिए पत्र द्वारा ही लिख रही हूँ । इतना अवश्य अनुरोध है कि यह पत्र अपने उन्हें मत दिखा देना ।

मैं ऐसी अनेक सहेलियों को जानती हूँ कि जो शीघ्र ही पहली या दूसरी संतान न चाहने के कारण गर्भस्राव का प्रयत्न करती हैं, वे इसके लिए अनेक गरम दवाइयाँ खाती

हैं और अखबारों में पढ़कर मासिक धर्म-संबधी दवाइयाँ मँगवाती हैं। तुम ऐसी भूल कभी मत करना। न कभी अपनी पास-पड़ोसिनों या दाइयों से पूछना। यह बड़ा खतरनाक है, खासकर स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए। गरम दवाइयाँ या गरम चीजें शरीर सहन नही कर सकता। इससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जो फिर जन्म भर पीछा नहीं छोड़ते, स्त्री की शक्ति नष्ट हो जाती है, वह कमजोर हो जाती है; सारी उम्र के लिए। डाक्टर अंसारी का नाम तुमने सुना होगा। वह काँग्रेस के एक प्रसिद्ध नेता थे, पर डाक्टर भी वह बहुत अच्छे थे। उन्होंने एक लेख लिखा था कि आज कल की सुशिक्षित स्त्रियों में गर्भपात या गर्भस्राव का जो सिलसिला चल पड़ा है, वह बहुत खतरनाक है और उसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर तथा उनकी भावी संतति पर अकल्पित रूप से पड़ रहा है। साधारणतः गर्भ-धारण और प्रसव में स्त्री को जो कष्ट होता है, उससे कहीं अधिक कष्ट और वेदना इस प्रकार के बलात् गर्भपात से होती है। मैं ऐसी अनेक सहेलियों को जानती हूँ कि एक बार गर्भपात के बाद वे फिर कभी पहले की तरह स्वस्थ नहीं हुईं, उनके मुख पर कभी रौनक़ ही नहीं आई। एक बार गर्भपात शरीर में कुछ ऐसा रोग भी कर देता है कि फिर कभी गर्भ ठहरता ही नही या ठहरता है तो दो तीन मास में स्वयं गर्भस्राव हो जाता है। फिर यह भी तो कोई जरूरी नहीं कि इस प्रकार

की गरम दवाइयाँ से स्राव हो ही जायगा। तुम "प्यारी" को तो जानती हो। उसका बड़ा बालक कितना सुन्दर है, बिलकुल-गौर वर्ण, लेकिन उसका छोटा भाई साँवला है, चेहरे पर वह बात ही नहीं। इसका कारण भी जानती हो ? दूसरा बालक जब पेट में पड़ा उस की माँ ने किसी तरह उसे मिटाने की कोशिश की, गरम दवाएँ खाईं, नतीजा यह हुआ कि उसका अपना उद्देश्य तो पूरा हुआ नहीं, गर्भस्थ बालक पर बुरा प्रभाव पड़ गया। अब वह बालक को जब देखती है तो अपनी मूर्खता पर पछताती है। कभी कभी तो इस प्रकार के दुष्प्रयत्नों में स्त्री की जान तक चली जाने का अंदेशा रहता है। इसलिए ऐसी भूल कभी न करना।

मैं मानती हूँ कि आज कल के आर्थिक संकट के दिनों में जब कि हमारी आमदनी सीमित है, यह स्वाभाविक है कि स्त्री और पुरुष दोनों यह चाहें कि उन की संतान कम हो। और मैं स्वयं एक के बाद एक संतान लगातार पैदा करने के विरुद्ध भी हूँ, लेकिन इस का सब से अच्छा उपाय संयम है। स्त्री पुरुष जितना संयम से रहेंगे, उतनी ही वे सुखी और स्वस्थ रहेंगे। परन्तु इसके साथ ही मैं यह भी स्वीकार करती हूँ कि ऐसा संयम कि तीन चार साल में केवल एक दो दफ़ा ही दम्पती परस्पर सहवास करें, आजकल असंभव है। यह उद्दाम वासना इतनी ज़बर्दस्त होती है कि इसे रोकना शायद कभी हानिकर सिद्ध हो। इसीलिए आज संतति-निरोध के कृत्रिम

साधनों का संसार भर में प्रचार हो रहा है। लेकिन इन से एक बड़ी हानि यह हो रही है कि स्त्री और पुरुष अविवेकी और उन्मत्त होकर विषय-भोग में डूब गये हैं। उन्हें गर्भ का भय नहीं रहा और वे लगातार विषय-भोग द्वारा अपने स्वास्थ्य तथा अपनी जीवन-शक्ति का मूर्खता से अपव्यय कर रहे हैं। विषय-भोग में लम्पट सर्व साधारण जनता आज निरंतर दुर्बल होती जा रही है। इसीलिए मैं इन साधनों का विरोध भी करती हूँ, लेकिन दूसरी ओर मैं यह भी जानती हूँ कि स्त्री-पुरुष जल्दी जल्दी संतान नहीं चाहते और न उन्हें इस की आवश्यकता ही है। इसलिए मैं तो बीच के मार्ग की सलाह देती हूँ कि संयम अधिक से अधिक समय तक करो और जब कभी महीने दो महीने बाद बग़ैर सहवास के रहना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो, तभी इन साधनों का प्रयोग किया जाय। इसका अर्थ यह है कि साल में ५—७ दफ़ा से अधिक पति को स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए, यह एक आदर्श है, लेकिन कठिन है। मैं स्वीकार करती हूँ कि इसके बिना हम स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति की रक्षा नहीं कर सकते। बार बार कृत्रिम साधनों का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों को काम-शास्त्र की दृष्टि से भी हानिप्रद है। इसलिए इनका प्रयोग जितना कम कर सकें, उतना कम करना चाहिए और इसका सर्वोत्तम उपाय यथा शक्ति अधिक से अधिक संयम है।

साधारणतः यौवन की उद्दाम वासना में मनुष्य बह जाते

हैं और यह भूल जाते हैं कि उन के स्वास्थ्य का मूल उनका वह यौवन-रस और जीवनी-शक्ति है, जिस के बल पर उन्हें अपना समस्त जीवन निभाना है। यह जीवन-रस ही मनुष्य में अपूर्व शक्ति और उत्साह का संचार करता है। और इसी के कारण मनुष्यों की रग रग में गरम गरम खून दौड़ता है, चेहरे पर एक रौनक रहती है, आँखों में चमक रहती है तथा कठिन से कठिन कार्य हँसते हँसते कर लेने और सब तकलीफ़ें उठा लेने की शक्ति रहती है। एक लेखक ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में इस विषय की चर्चा की है। वह लिखते हैं, जिस दिन यौवन-रस की गागर फूट जायगी, सारा जीवन फीका और नीरस लगेगा, दिलों की दुनिया छोटी हो जायगी, मुस्कराते हुए फूल तुम्हें मुँह चिढ़ाते हुए दीखने लगेंगे, खिलखिलाती हुई चाँदनी देखकर दिल में हूक उठेगी, मुस्कराती हँसती हुई आँखों में अँधेरा छा जायगा, उत्साह और खून ठंडे पड़ जावेंगे, बस दुनियाँ की हर सुन्दर चीज बेजान, बेस्वाद और भद्दी हो जायगी। सारी जिन्दगी बेमज़ा और बेस्वाद हो जायगी, जवानी ही नष्ट हो जायगी, न दिल में उत्साह रहेगा और न कोई शक्ति। जीवन के संघर्ष में तुम्हें हर जगह नीचा देखना पड़ेगा।"

वही लेखक फिर आगे लिखता है—"औरत की हालत तो इस मामले में इससे भी खराब है। यह स्वभावतः नाज़ुक होती है। उनका स्वास्थ्य उसकी सब से बड़ी संपत्ति है। यही

उसका धन है, इस पूँजी से उसे बड़ी लम्बी यात्रा खतम करनी है। उसे अपने जीवन से, अपने खून-मांस से उन कलेजे के टुकड़ों की सृष्टि करनी है, जिनके बिना कदाचित् ही उनके जीवन की सार्थकता हो।...यदि उसकी अपनी तन्दुरुस्ती ठीक है, अगर उसमें फुर्ती है, शक्ति है, उमंग है, काम करने और सहने की शक्ति है, अगर वह थकावट का अनुभव नहीं करती, अगर उसकी आँखों में चमक है, गालों पर लाली है, चेहरा नूर सा दमकता है, तो बच्चे भी तन्दुरुस्त रहेंगे, घर और समाज की शोभा होंगे। रोगी बच्चा न केवल समाज के लिए वरन् एक कुटुम्ब के लिए भी भयंकर अभिशाप है।...उधर जवानी का सौंदर्य माता को छोड़ने लगता है, उसे एक न एक शिकायत खड़ी होती आती है, उस की सन्तान कमज़ोर होने लगती है, खीज बढ़ती जाती है, जहाँ सौंदर्य, प्यार और मिठास का झरना बहता था, वहाँ सूखा पड़ जाता है, जीवन की हरियाली का अन्त हो जाता है, दिलों में खटाई पड़ जाती है, बात बात में बहस और हुज्जत, बात-बात में उलझ पड़ना, दो कड़वी बातें, सिसकियाँ और भूखे पेट सोना। गृहस्थी श्मशान बन जाती है, ज़िन्दगी से मौत अधिक लुभावनी लगती है। ज़रा ज़रा सी बात में बच्चों पर बुखार निकलता है। उनपर मार पड़ती है, वे भी हठी, चिड़चिड़े, उदास हो जाते हैं। इस समस्त स्थिति और दुष्परिणाम का एक मुख्य कारण यौवन-रस का अविवेक और

असंयमपूर्ण विनाश है।"*

यह सब लम्बा उद्धरण तो मैं दे गई, शायद यह सब लिखने की तुम्हें जरूरत भी न थी और न मैं लिखने का इरादा करके ही बैठी थी। फिर भी जब लिख गई, तो मुझे विश्वास है कि तुम अपने जीवन में संयम के महत्त्व को समझोगी। आज कल सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों के कारण संयम का बाँध टूट गया है और उससे हमारी कितनी हानि हो रही है, इस पर हम सब को अवश्य विचार करना चाहिए।

इस संबंध में एक बात और लिख दूँ। संयम के संबंध में एक कठिनता और आती है। भले ही पुरानी पुस्तकों में स्त्रियों को बदनाम करने के लिए उनकी काम-भावना पुरुष की अपेक्षा आठगुनी बताई गई है, लेकिन सचाई यह कि पुरुष इस संबंध में अधिक अविवेकी होता है। वह अधिक शक्ति-शाली होता है। आजकल के जिस वातावरण में वह रहता है, वह बहुत अधिक उत्तेजक होता है। मित्र-मण्डली, उपन्यास, कहानी और विशेषकर सिनेमा आदि सभी उसकी वासनाओं को बढ़ाने वाले होते हैं। इसलिए वह अधिक से अधिक अपनी स्त्री से यह अपेक्षा रखता है कि वह उसकी वासना-पूर्ति में पूर्ण सहयोग दे। स्त्री भी इसमें रस लेती है, इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन घर के झंझटों से—बाल-बच्चों की फिक्र से उसे

* आनन्द निकेतन ले॰ श्री राम नाथ 'सुमन'।

छुट्टी नहीं मिलती। पति के सो जाने के बाद भी काफ़ी देर उसे घर के सब काम-काज निबटाने में लग जाती है। इन सब से थककर वह आराम से सोना चाहती है, बहुत दफ़ा छोटे बालक को आराम से सुलाने के लिए भी आवश्यक हो जाता है कि वह उसके पास सोये। लेकिन उधर पति देवता को उसकी प्रतीक्षा में मिनट मिनट भारी मालूम हो रहा होता है। स्त्री बेचारी न उसके पास जा पाती है, न इन्कार कर सकती है। एक ओर पति के प्रति आत्म-समर्पण की भावना और दूसरी ओर अपनी थकान तथा सन्तान के प्रति मातृ-कर्तव्य की पुकार। वह अजीब दुविधा में पड़ जाती है। ज्यों ज्यों वह देर करती है, पति की उत्तेजना और प्रतीक्षा बढ़ते बढ़ते कुछ क्षोभ व रोष का रूप धारण करती जाती है। और विवश होकर जब वह जाती है, तब पति अधिक समय तक संयम नहीं कर सकते, शीघ्र ही स्खलित हो जाते हैं। मन ही मन खिजते हैं स्त्री पर, लेकिन उसकी विवशता को समझने का प्रयत्न नहीं करते। इसीलिए मैं कहना चाहती हूँ कि इस संबंध में स्त्री के सामने कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है।

मुझे याद है कि कुछ महीने पहले मैं एक घर में गई थी, मेरी सहेली शायद बाहर गई हुई थी, थोड़ी देर बैठक में प्रतीक्षा करनी पड़ी। मेज़ पर एक डायरी पड़ी हुई थी, उठाकर पढ़ने लगी, यद्यपि यह अनुचित था। उसके कुछ शब्द आज तक मुझे याद हैं। 'मेरी पत्नी अत्यन्त धार्मिक प्रकृति की है,

वासना उसमें या तो बहुत कम है अथवा वह स्वयं विवेक-शील व संयम-शील है। एक दिन मैंने उसको इस प्रकार के संयम पर कुछ विस्मित होकर कहा कि—तुम्हें तो किसी तपस्वी ऋषि की पत्नी होना चाहिए था, जो कभी तुम्हें वासना-पूर्ति के लिए कष्ट न देता। उसने अत्यन्त चतुरतापूर्वक उत्तर दिया कि—तो आप ही ऋषि बन जाइये। मैं निरुत्तर हो गया। विचार किया और मैं अब यह सोचता हूँ कि मुझे संयम करना चाहिए और अपनी वासनाओं को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।" डायरी के ये शब्द स्मरण से लिखे हैं, संभवतः इन में कुछ हेर-फेर हो गया है।

मैं कहना यह चाहती थी कि पति को संयम की ओर ले जाना कठिन तो है, परन्तु इसीलिए स्त्री का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पति-पत्नी कभी एक बिस्तरे पर न सोवें और यदि संभव हो सके तो अलग-अलग कमरों में भी सोवें। अनेक निर्दोष मनोरंजनों से भी वह पति को प्रसन्न कर सकती है। इसके लिए मैं समझता हूँ कि यदि कभी कभी केरम व ताश आदि इनडोर खेल खेल लिये जावें, तो भी पति को पत्नी या जीवन-संगिनी का सुख मिल सकता है। प्रातः या सायंकाल साथ साथ घूमना अथवा एक साथ भोजन करना भी पति के लिए सुखद होता है। लेकिन इनके साथ साथ यदि वह किसी प्रकार के धार्मिक या सामाजिक कर्तव्य का पालन नियम

से करें, तो विशेष लाभ हो सकता है। चित्तवृत्तियों को वासना की ओर से दूसरी ओर मोड़ने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। पत्नी का कर्तव्य है कि वह समय समय पर पति को समझाती रहे कि असंयम से उन दोनों की और खास कर उनकी संतान की बहुत अधिक हानि होगी। मै एक पड़ोसिन को जानती हूं। एक दिन इसी प्रसंग पर बातचीत चल पड़ी। वह भी पति की वासना से अत्यन्त क्षुब्ध थी। बहुत पढ़ी-लिखी तो वह न थी और न हम उसे आजकल की परिभाषा में बहुत सुसंस्कृत कह सकते हैं। मुझे कहने लगी—"मैंने तो कुछ दिनों तक एक नये उपाय का अवलम्बन किया है। रात को सोते समय ही उनका बुलावा होता था। मैं परेशान थी, कुछ कमजोरी भी महसूस करती थी। वह किसी तरह मानते न थे, तब मै प्रति दिन रात को भोजन के बाद कोई न कोई छोटी सी अप्रिय चर्चा चलाने लगी। नतीजा यह होता था कि वह नाराज होकर अपने कमरे में जा सोते थे और मुझे बुलाने का उन्हें साहस ही न होता था। सवेरे उठते ही मै फिर हँस हँसकर बोलती। सारा दिन हँसी खुशी में बीतता, पर रात को फिर कपड़े, गहने या बालक का उलहना। इस तरह करीब १५-२० दिन गुजार दिये और वह एक दिन भी मेरे पास नहीं आये।

मैंने यह उदाहरण इसलिए नहीं दिया कि यह आदर्श है अथवा इसका अनुकरण करना चाहिए। मै तो सिर्फ यह

कहना चाहती थी कि इस संबंध में साहस के पुंज पुरुष की अपेक्षा नारी का कर्तव्य अधिक है । पुरुष है ही उत्तेजना और पौरुष का पुंज, नारी है शान्ति और संयम की मूर्ति। पति की वासना को भी कम करने का उत्तरदायित्व उसी पर है ।

लेकिन इसके साथ मैं यह अवश्य कह देना चाहती हूँ कि संयम का अर्थ कठोर शब्दों में ब्रह्मचर्य नहीं है । मनुष्य की वासना को बिलकुल नष्ट नहीं किया जा सकता। अति दोनों ओर बुरी है। अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को नष्ट भी नहीं होने देना चाहिए । इस संबंध में विवेक से काम न होने से परिवार का सुख और सन्तोष नष्ट हो जाता है । और इस कभी कभी की वासना-पूर्ति के लिए ही मैं कृत्रिम साधनों के प्रयोग की सलाह देती हूँ ।

साधारणतः एक परिवार में तीन चार बच्चे अच्छे लगते हैं। इनसे अधिक संख्या में बच्चों का पालन-पोषण कठिन होता है, इसलिए मेरी सम्मति में तीन-चार बच्चों तक तो किसी को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लेकिन एक बात है, दो बच्चों में परस्पर अन्तर कम से कम ढाई-तीन वर्ष का होना चाहिए। तभी बच्चों का पालन-पोषण ठीक हो सकता है। एक बात का तो सदा स्मरण रखना चाहिए कि जब तक बच्चा दूध पी रहा होता है, तब तक गर्भ धारण करना किसी भी स्थिति में उचित नहीं है। इससे न तो गर्भ का ही ठीक ठीक पोषण हो

सकता है और न दूध पीने वाले बच्चे को पर्याप्त पोषक दूध मिल सकता है।

साधारणतः स्त्रियाँ अपने विवाह के प्रथम दो एक वर्ष तो शृंगार या सौंदर्य आदि की रक्षा का प्रयत्न करती हैं, लेकिन जहाँ दो एक बालक हुए वे फिर शिशु-पालन में इतना अधिक व्यस्त हो जाती हैं कि पति के हृदय को आकृष्ट करने की ओर कतई ध्यान नही देतीं, तब केवल पति के प्रति उनका कर्तव्य रोटी पका देना भर रह जाता है। पति भी घर को एक होटल समझने लगता है, जहाँ उसे ठीक समय पर रोटी मिल जाती है और उस के बच्चों का पालन-पोषण होता है। पति के प्रति अपने आकर्षण को सदा बनाये रखना चाहिए। इस संबन्ध में शायद तुम्हें पहले भी कुछ लिख चुकी हूँ, इसलिए यहाँ उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं। बस, इतना तुम स्मरण रखना कि पारिवारिक जीवन को सदा सुखी और स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है।

स्वास्थ्य के बारे में तुम्हें पहले भी शायद दो एक बार लिख चुकी हूँ। लेकिन इस ओर मैं फिर तुम्हारा ध्यान खींचना चाहती हूँ, क्योंकि साधारणतः भारतीय स्त्रियाँ अपने स्वास्थ्य के प्रति असावधान होती हैं। वह अपने पति या बालकों की चिन्ता तो हद से ज्यादा करती हैं, लेकिन अपने आपकी—बाहरी तड़क-भड़क या कपड़ों की बात मैं नहीं कर रही—चिन्ता वे नहीं करतीं। परिणाम यह होता है कि उनका

स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और उसके साथ साथ उनका सौन्दर्य और आकर्षण भी। पीछे पछताने से क्या होता है। इस संबंध में पति पर अपनी चिन्ता नहीं छोड़नी चाहिए। वह तो घर-गृहस्थी के कामों से प्रायः उदासीन रहता है। लेकिन यदि तुम अपने स्वास्थ्य के बारे में ज़रा भी चिन्ता करोगी तो वह इसे बुरा नहीं मानेगा। मैं उन नज़ाकत की पुतलियों की बात नहीं कर रही, ज़रा सा ज़ुकाम या सिर-दर्द होते ही चारपाई पर पड़ जाती हैं और सारे घर को परेशान कर देती हैं। ऐसी स्त्रियाँ पति का प्रेम भी खो देती हैं। मैं तो उन अधिकांश स्त्रियों की बात कर रही हूँ, जो अपने सामने कर्तव्य और त्याग का आदर्श रखती हैं, और ऐसा करते हुए अपने स्वास्थ्य की चिन्ता भी नहीं करतीं। यह भी एक अति है, जो दुष्परिणाम पैदा करती है। पिछले दिनों मैं एक सहेली के घर गई थी। वह अत्यन्त सुसंस्कृत रुचि की है। साहित्य से उसे प्रेम है, उस के विचार बहुत ऊँचे हैं, धार्मिक प्रकृति उस में कूट कूट कर भरी है। अत्यन्त पतिव्रता है। व्याख्यान देना भी खूब जानती है। जब वह व्याख्यान देने के लिए खड़ी होती है, तब सारी सभा में सन्नाटा छा जाता है। घर के कामकाज में वह चतुर है, सीना-पिरोना हो, रसोई हो, सब में कुशल है। जिस मोहल्ले में वह रहती है, उसका वहाँ मान है; लेकिन शरीर से वह कमज़ोर है—शायद वह विविध कामों में व्यस्त रहने के कारण अपने स्वास्थ्य की चिन्ता ही नहीं कर पाती। हाँ, तो

उसके घर में गई। वह शायद स्नान-घर में थी, मैं उसके कमरे में कुर्सी पर बैठ गई। मेज़ पर कोई पत्रिका उठाने के इरादे से हाथ बढ़ाया था कि दो एक कागज़ हाथ में लग गये, उन्हें खोल कर पढ़ने लगी। वह पत्र उसके पति का था। इस समय स्मरण तो नहीं है, पर उसके कुछ शब्द इस प्रकार के थे—

"मैं सोचा तो बहुत दिनों से करता था, परन्तु विशेष अनुभव पिछले दिनों से करने लगा हूँ कि अपनी कमज़ोरियों के कारण मैंने तुम्हारी अत्यन्त उपेक्षा की है—मेरा मतलब तुम्हारे स्वास्थ्य और आराम से है। मैं इस संबंध में स्वभावतः शुरू से ही गाफ़िल रहा हूँ, न अपना स्वास्थ्य देखता हूँ, न बालकों का न तुम्हारा। लेकिन यह कह कर मैं झूठ नहीं बोलता; अपनी सन्तान की क़सम खाकर कहना चाहता हूँ कि जब कभी तुम्हें खाँसते देखता हूँ, जुकाम में ग्रस्त देखता हूँ, तब दिल में ऐसी चोट लगती है कि मानों कोई छाती पर हथौड़ा मार रहा हो। मैं तो तुमसे एक ही भिक्षा माँगता हूँ। तुम ने मुझे बहुत कुछ दिया है और उसके लिए मैं बहुत ऋणी हूँ। तुम ने अपने कर्तव्य से भी अधिक मुझे ऋणी बनाया है—मेरी सभी तरह की चिन्ता तुम करती हो, फिर भी आज एक भीख माँगता हूँ। वह भीख तुम्हारे स्वास्थ्य की है। तुम अपने स्वास्थ्य की चिन्ता स्वयं करो। मैं अपनी ज़िम्मेवारी तुम पर डाल रहा हूँ, पर मुझे आशा है कि जिस तरह तुम ने सदा मेरे सुख का ध्यान किया है, मेरी इस इच्छा को भी ईमान-

दारी के साथ पूर्ण करोगी। अपने भोजन आदि में अधिक उदार बनो। दूध, मक्खन, बादाम आदि खाओ। तुम भी यह सुनते सुनते थक गई हो, लेकिन मेरा यह विश्वास है कि तुम्हारे शरीर में पोषक तत्त्वों की भारी कमी है। तुमने अपना सर्वस्व मुझे दिया है, उस पर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा—तुम मेरी चिंता करती हो—तुम्हारा शरीर भी तो मेरा है, उसकी रक्षा भी तुम्हें करनी है—यही भिक्षा मैं चाहता हूँ।" पत्र में और भी बहुत कुछ था पर वह स्मरण नहीं रहा। वस्तुतः मैं सोचती हूँ कि अधिकांश हिन्दू स्त्रियाँ अपने शरीर व स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करतीं। इसका परिणाम अन्त में समस्त परिवार को भोगना पड़ता है, जिस घर में अधिक समय तक बीमारी रहे, वहाँ घर की शान्ति और सुख तथा अन्त में परस्पर आकर्षण भी नष्ट हो जाता है।

प्रथम सन्तान के अवसर पर मैं ने गर्भ-काल के लिए कुछ सूचनाएँ दी थीं, यदि वह पत्र सुरक्षित हो तो उसे एक बार फिर पढ़ लेना। सूचनाओं पर ध्यान दोगी, तो निस्संदेह लाभ होगा।

अरुण को प्यारभरा चुम्बन और जीजाजी को नमस्ते।

तुम्हारी सदा हितैषिणी—

शारदा

स्त्री का कार्य-क्षेत्र—(१)

प्रिय बहिन इन्दु

पिछले दिनों मुझे एक सहेली के घर जाना पड़ा। वह पिछले दिनों ही जेल से छूटकर आई थीं, उनके स्वागत व सम्मान में बहुत सी उनकी सहेलियाँ वहाँ एकत्र हुई थीं। इस में संदेह नहीं कि मैं अपनी उस सहेली पर—सुविधा के लिए उसका नाम 'क' रख लेती हूँ—गर्व करती हूँ। उन्होंने वस्तुतः भारतीय नारी का गौरव बढ़ाया है, देश के लिए सब सुखों का बलिदान उन्होंने किया है। घर-बार, बाल-बच्चे और पति का सुख तथा अपना आराम, इन सब चीज़ों का उन्होंने कोई ख़याल नहीं किया और देश के राष्ट्रीय संग्राम में इन सब की आहुति देकर वह एक सच्ची वीरांगना की भाँति कूद पड़ीं। इस संग्राम में कूदने से पूर्व उन्हें किसी ने त्याग या बलिदान के पक्ष पर नहीं देखा था। वे मज़े में फ़ैशनेबल ही कही जा

सकती थीं, बढ़िया साड़ी, हाथों में सुन्दर सा नज़ाकत को प्रकट करता हुआ बटुआ; हाथों, गले व कान में नये नये फ़ैशनों के सोने के हलके हलके ज़ेवर, मज़े में रहना, मज़े में खाना-पीना, घर पर दो दो नौकर—बस, आजकल की उच्च मध्यम श्रेणी की स्त्री जैसे रहती हैं, क़रीब वैसे ही। लेकिन गांधी जी का अद्भुत चमत्कार, उनके द्वारा दिये गये निमंत्रण ने उस बहन के दिल को बदल दिया, सब आराम छूट गये, देश की लगन लग गई। बढ़िया रेशमी साड़ियों का स्थान खद्दर की मोटी साड़ियों ने ले लिया, सोने के ज़ेवर गायब हो गये, हाथों में दो एक सादी शीशे की चूड़ियाँ, कभी कभी वह भी नदारद, सब मौज खतम, कभी इस सभा में और कभी उस सभा में, कभी बाज़ार में पिकेटिंग करती हुई, तो कभी स्वयंसेविकाओं के जलूस का संगठन और संचालन करती हुई। न अपनी रोटी की फ़िक्र है और न अपने बच्चों के भोजन की। कभी सवेरे भोजन नहीं हुआ है, तो कभी शाम का भोजन करने का समय नहीं मिला। गाँवों के किसानों को राष्ट्रीयता का संदेश पहुँचाना है, तो न सर्दी की परवाह, न गर्मी की। महान् बलिदान और तपस्या की वह साक्षात् मूर्ति। तपःपूत कृश दुर्बल शरीर में देशभक्ति की ज्वाला से प्रदीप्त हृदय, समस्त जनता उसके प्रति श्रद्धा रखती है। वस्तुतः है ही वह ऐसी महिमामयी नारी।

हाँ, मैं उसी 'क' के घर गई थी। अन्य भी बहुत सी स्त्रियाँ

आई थीं, जब वे चली गईं और उसकी दो तीन चिरपरिचित सहेलियाँ रह गईं, तब कुछ विचित्र सी चर्चा मैंने सुनी, जिसकी कल्पना भी मैंने न की थी। 'क' किसी काम से जा चुकी थीं। मैंने कहा—"बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है 'क' ने। धन्य है यह देवी और उसके परिवार के सदस्य, उसके पति का भाग्य है कि उसे ऐसी महिमामयी पत्नी मिली।" तुम तो जानती हो कि परनिन्दा का स्वभाव मनुष्य में है और विशेष कर हम स्त्रियों में। हम किसी की प्रशंसा सुन नहीं सकतीं। एक स्त्री बोली—"यह तो उसके पति ही बता सकते हैं, कि उन्हें कितना सुख है। महीनों हो जाते हैं पारिवारिक सुख किस चिड़िया का नाम है, यह वह जानते तक नहीं। हमेशा नौकरों के हाथ की रोटी, कभी जली, कभी कच्ची। बच्चे उधर रोते रहते हैं। उन्हें नहलाना-धुलाना, कपड़े पहनाना, सब नौकर के हाथ में। उनके पिता परेशान हैं। बच्चे नहीं जानते कि माता का स्नेह क्या होता है। जब देखो, तब सभा, लैक्चर, जलूस या डेपुटेशन अथवा अदालत या जेल।" शायद वह और भी कुछ कहती, लेकिन जब उसने देखा कि सुनने वाले 'क' की यह निन्दा सुनने को तैयार नहीं, तो वह चुप हो गई। और कुछ समय बाद हम अपने अपने घर चली गईं।

उस रात को मैं उसी 'क' की देशभक्ति की बात सोच रही थी कि मेरे हृदय में उसकी देशसेवा का दूसरा पहलू भी सामने आ गया, जो एक दूसरी सहेली ने रखा था। मैं

सोचने लगी कि वह जनता की कितनी श्रद्धा की पात्र है, लेकिन घर में क्या है ? वह श्रद्धा की देवी अवश्य है, नतमस्तक होकर उसकी भक्ति अवश्य करनी चाहिए, लेकिन क्या वह पति के साथ एक प्राण होकर उसके सुख-दुःख में साथ देकर उसके जीवन को रसमय भी बना सकती है। मन्दिर में उसकी प्रतिमा रखकर पूजा करने को पुरुष आतुर हो उठेगा, उसे देखकर वह भक्ति और श्रद्धा से गद्‌गद् हो उठेगा, लेकिन क्या वह उसे अपनी जीवन-सहचरी भी बनाना पसन्द करेगा ? क्या वह उससे प्रेम चर्चा में रस ले सकेगा ? क्या वह उससे रमणीयता और आकर्षण की, अपने सुख-दुःख में लीन होने की आशा कर सकेगा।

मैंने शायद कभी तुम्हें लिखा था कि पुरुष संसार के कठोर संघर्ष से नहीं घबराता, लेकिन घर आने पर वह सदा इस प्रतीक्षा में रहता है कि कोई उससे हँस कर बात करे, उसे पानी दे, हाथ धुलावे और नाश्ता दे। वह बड़े बड़े पत्थरों को तोड़ लेगा, वह कड़कती धूप में काम कर लेगा लेकिन घर पर रमणी के रूप में आनंद देने वाली, भगिनी के रूप में स्नेह करने वाली और माता के रूप में सेवा करने वाली की वह अवश्य अपेक्षा रखता है। इसके बिना उसका जीवन दूभर हो जाता है। रणक्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़ने वाला सैकड़ों आपत्ति खुशी खुशी सह सकता है। लेकिन बच्चों को रोता देखकर झुँझला पड़ता है। सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र

में काम करने वाली नारी का त्याग राष्ट्र के लिए कितना ही महान् क्यों न हो, उसके पति को वह किसी तरह संतोष नहीं दे सकता। वह घर में ऐसी रमणी और जीवन-सहचरी की आकांक्षा करता है, जो आदर और श्रद्धा की पात्र न हो, लेकिन जिससे वह हँस-खेल सके अपने जीवन के सुख-दुख में जिसे शामिल कर सके, जिससे लोक का आनन्द भी प्राप्त कर सके, जो उसी की, केवल उसी की या उसके बच्चों की हो। कभी कभी पति स्त्री को बच्चों या घर-गृहस्थी के काम में उलझी देख कर अपनी उपेक्षा से खिन्न हो जाता है, जो पत्नी घर की बिलकुल उपेक्षा करदे, चाहे कितने ही ऊँचे और पवित्र उद्देश्य से ही क्यों न करे, तो अच्छा पति—यदि वह भी असाधारण देव न होकर साधारण मनुष्य है—स्वभावतः खिन्न और दुखी अवश्य होगा। मैं यह सब लिखकर राष्ट्र-सेवा के महत्त्व को कम नहीं करना चाहती। वह तो अत्यन्त महान् है। लेकिन देश-सेवा का यह महान् व्रत लेने वालों को यह न भूल जाना चाहिए कि वे गृहस्थी हैं। पारिवारिक जीवन की अपनी एक पृथक् सत्ता है। उसकी उपेक्षा करने से जीवन में दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिए एक साधारण गृहस्थ स्त्री को अपने पति और परिवार की चिन्ता सदा करनी चाहिए।

इसी सिलसिले में एक और महत्त्वपूर्ण विषय की भी चर्चा करना चाहती हूँ। स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर है या बाहर? उक्त देश-भक्त महिला की भाँति सैकड़ों स्त्रियाँ संसार के क्षेत्र

में विभिन्न काम करती हैं, चाहे उनका उद्देश्य केवल अर्थोपार्जन हो। कोई स्त्री डाक्टर है, कोई अध्यापिका कोई दफ्तरों में टाइपिस्ट है तो कोई क्लर्क। इस युद्ध के कारण तो भारत में भी हजारों स्त्रियाँ विभिन्न सरकारी दफ्तरों में काम करने लगी हैं। विविध सैनिक विभागों में भी हजारों स्त्रियाँ प्रविष्ट हो चुकी हैं। सिनेमा लाइन में भी पिछले कुछ वर्षों से प्रतिष्ठित घरानों की स्त्रियाँ बहुत शौक से दाखिल होने लगी हैं।

इस नई प्रवृत्ति का हमारे सामाजिक और पारिवारिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह आज असंदिग्ध रूप से तो शायद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका परिणाम देखने के लिए अभी कुछ वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लेकिन फिर भी आज हमें यह तो अवश्य सोचना है कि परिवार का जीवन अधिक से अधिक आनन्दमय हो, उस में बाधा न पड़े। मैं जब 'आनन्द' कहती हूँ, तो उसका अर्थ केवल दाम्पत्य या काम-वासना-संबंधी सुख नहीं है। यद्यपि मैं उसकी उपेक्षा नहीं करती। मेरा आशय उस पारिवारिक जीवन से है, जिसमें एक साथ अनेक उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों का भी समावेश है।

आखिर विवाह का उद्देश्य क्या है? मैं यह मानती हूँ कि विवाह का उद्देश्य केवल कामवासना की पूर्ति नहीं है। यह तो एक गौण विषय है, एक साधन है, सृष्टि-क्रम को आगे

चलाने का। स्त्री की रमणीयता में जो आकर्षण होता है, वह दम्पती में परस्पर प्रेम की अभिवृद्धि करके सन्तान उत्पन्न करने का हेतु बनता है और फिर दोनों मानव का—संसार की सर्वश्रेष्ठ कृति का—निर्माण करते हैं। बस, यही विवाह का उद्देश्य है। हमें कोई कार्य करना चाहिए या नहीं, इसकी एक ही कसौटी है कि उससे हमारी उद्देश्य-पूर्ति में तो कोई बाधा नहीं पड़ती। राष्ट्र-निर्माण बहुत ऊँचा उद्देश्य है और उसके विविध अंगों की पूर्ति आवश्यक है। लेकिन सब से महत्त्वपूर्ण अंग है राष्ट्र की इकाई—मानव—का निर्माण। यदि इसके लिए पूर्ण मनोयोग और सावधानता से तैयारी न की गई, तो राष्ट्र-निर्माण के शेष सब अंग अपूर्ण रह जावेंगे। स्वस्थ, उत्साहयुक्त, सदाचारी और प्रतिभावान् मनुष्य राष्ट्र की सबसे अमूल्य सम्पत्ति होता है, वही तो राष्ट्र-निर्माण की नींव है। और यह काम पुरुष द्वारा नहीं हो सकता, यह काम तो माता का है, वह निर्माण करती है, इसीलिए उसे माता का गौरवपूर्ण पद मिला है। बस, यदि माता इस कार्य को पूर्ण करते हुए और कुछ कर सकती है, तो उसे वह सब कुछ करने का अधिकार है। यदि बाहरी कार्य करने का—विविध सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्य करने का—प्रभाव उसकी सन्तान पर बुरा पड़ता है, उस की उपेक्षा होती है, उसके गुणों का उचित विकास नहीं हो पाता, उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, उसकी शिक्षा-दीक्षा में अन्तर पड़ता है और वह

कुसंगति में पड़ जाता है, तो फिर स्त्री को—माता को—दूसरे कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। वह एक ओर सार्वजनिक क्षेत्र में राष्ट्र की कुछ सेवा कर सकती है, लेकिन दूसरी ओर वह यदि अपनी शक्ति बालक के निर्माण में नहीं लगा पाती, और उसका बालक अस्वस्थ और अविकसित रह जाता है, तो वह राष्ट्र की अपसेवा भी करती है, क्योंकि राष्ट्र या समाज-द्वारा सौंपे गए कार्य को वह पूरा नहीं करती।

शायद मैंने तुम्हें कभी लिखा था कि गांधी, ऋषि दयानन्द, महात्मा बुद्ध और शिवाजी या नैपोलियन की माताओं ने राष्ट्र की जो सेवा की है, वह बड़े बड़े राजाओं और सम्पन्न व्यवसायियों से कम नहीं है। आज हम प्राचीन स्मृतियों या शास्त्रों का मज़ाक उड़ा देते हैं, लेकिन वस्तुतः उसमें ऐसे अनेक तत्व पाये जाते हैं, जिनकी सत्यता असंदिग्ध है। मनु ने पत्नी के कार्य बताते हुए लिखा है—संतान की उत्पत्ति, पालन, अतिथि मित्र आदि का भोजन अग्निहोत्रादि धर्म-कार्य से कुटुम्बी जनों की सेवा, तथा पति का मनोरंजन, आदि कार्यों से स्त्री सारे घर भर को स्वर्ग बना देती है। वस्तुतः स्त्री का यह प्रधान कार्य है। जो स्त्री विवाह नहीं करती, और आत्म-विश्वास-पूर्वक दृढ़ आत्म-संयम का व्रत लेकर राष्ट्र-सेवा करती है, उसका मैं आदर करती हूँ, लेकिन विवाह कर लेने के बाद यदि वह कोई ऐसा कार्य करती

है, जिससे विवाह के वास्तविक पत्नी-धर्म में बाधा पड़ती है, तो वह अपने कर्तव्य से च्युत होती है। यह कह कर मैं उस देश-प्रेम की मूर्ति महिला का निरादर नहीं करना चाहती। आज भारत पराधीन है, इसकी स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य है—उस की सेवा महत्वपूर्ण कार्य है, आपद्धर्म के रूप में। चित्तौड़ की राजपूत स्त्रियाँ अपने घरों में रहती थीं। उनके राज्य पर घोर विपत्ति के समय वे चूड़ियाँ उतार कर, केसरिया बाना पहन कर हाथ में तलवार ले लेती थीं, लेकिन युद्ध समाप्त होते ही वे फिर घर-गृहस्थी में लग जाती थीं। जिस तरह किसान या मजदूर अपना कार्य छोड़ कर युद्ध के समय सेना में भरती हो जाते हैं, इसी तरह देश पर आपत्ति के समय स्त्रियों को भी राष्ट्र-सेवा करने का अधिकार है, लेकिन वह है केवल आपद्धर्म। साधारणतया नारी और विशेष कर पत्नी का कार्य-क्षेत्र घर-गृहस्थी तथा ऐसे काम हैं, जिन से उस के घर-गृहस्थी के कार्य में बाधा न आवे।

यह विषय आज नारी-समस्या का प्रधान विषय है। उस पर मैं कुछ और भी लिखना चाहती थी, लेकिन आज नहीं। फिर किसी दिन। दोनों बच्चों को प्यार। बहनोई जी को नमस्ते।

तुम्हारी हितैषिणी।

शारदा

स्त्री का कार्य-क्षेत्र—(२)

प्रिय बहिन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम ने मुझे बुलाया है, मैं अवश्य पहुँचूँगी, लेकिन शायद कुछ दिन बाद ही आ सकूँ। तुम वापसी डाक से लिखना कि कब तक मेरा वहाँ पहुँच जाना आवश्यक है, जिस से प्रसव के समय मैं पूरी तरह सहायक हो सकूँ। किसी तरह की चिन्ता न करना।

तीन चार दिन पहले पत्र भेज चुकी हूँ। उसी चर्चा को मैं इस पत्र में भी फिर उठाना चाहती हूँ। पिछले दिनों मैं श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चित्रांगदा नाटक पढ़ रही थी। यदि तुम्हें मिल सके, तो अवश्य पढ़ना। चित्रांगदा के रूप में आज की नारी और उसके कार्यक्षेत्र पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

चित्रांगदा मणिपुर की राजकुमारी थी। वह पुरुष वेश में रहती थी, पुरुषों की ही तरह धनुष-बाण धारण कर शिकार खेलती थी। वह आज कल की नारी की तरह पुरुष का मुकाबला प्रत्येक क्षेत्र में करती थी। वह बहुत गर्व से कहती थी—

पुरुष-समाज सज, तुल्य युवराज के,
करती हूँ राज-काज, फिरती यथेच्छ हूँ।
जानती नहीं हूँ लाज और भय; साथ ही
अन्तःपुर वास;

एक बार मृगया के लिए चित्रांगदा वन में गई थी, अर्जुन उस वन में अज्ञातवास करते हुए मार्ग में सो रहे थे, चित्रांगदा ने अपने बल और पौरुष के अभिमानवश उन से रास्ता छोड़ कर उठ खड़े होने के लिए कहा। वह नहीं उठे। उसने धनुष की नोक से उसे जगाया, लेकिन ज्यों ही वह उठ कर खड़े हुए, उनके विशाल और दृढ़ शरीर तथा पुरुषत्व को देखकर वह अपना कृत्रिम पुरुषत्व भूल गई। उसे अपनी वीरता का अभिमान जाता रहा। वह बाल्यकाल में कभी अर्जुन को रण निमंत्रण देने के स्वप्न लिया करती थी। अर्जुन को सामने देखकर वे सब स्वप्न विलीन हो गये और उनसे विवाह की इच्छा करने लगी। तब उस ने—

फेंक दिया पुरुष-परिच्छद उतार के
पहनी सुरंग साड़ी, कांची और किंकिणी
कंकणों समेत—

फिर वह नारीत्व की उपासना करती है और अपने नारी-सुलभ सौंदर्य की प्राप्ति का प्रयत्न करती है—ठीक उसी तरह जिस तरह आज की नारी पुरुष का मुकाबला करने का प्रयत्न करती हुई अपने रमणीत्व की प्रसाधना के लिए सैकड़ों प्रयत्न करती है। आखिर अर्जुन विवाह कर लेता है। वस्तुतः यही नारी का क्षेत्र है।

चित्रांगदा की यह कथा पौराणिक है, परन्तु इसमें एक बड़ी भारी सचाई है। आज की रक्षत और हाशिक्षत यूरोपियन नारी की भी यही कथा है। वह एक ओर प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की प्रतिस्पर्धा करके यह सिद्ध करना चाहती है कि कि वह उनसे किसी तरह पीछे नहीं है, दूसरी ओर वह उसे अपनी ओर आकृष्ट करने और लुभाने की दृष्टि से नारीत्व का प्रदर्शन करने के लिए और भी उत्सुक हो उठी है। वह एक क्षेत्र में नारी-सुलभ गुणों का बलिदान करके पौरुष को जगाना चाहती है, दूसरी ओर वह नारीत्व के प्रदर्शन के लिए अपने रमणीत्व को और भी चमकाना चाहती है। हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्री महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र यूरोपियन नारी को "पुरुष के मनोविनोद की वस्तु बने रहने की आवश्यकता नहीं है। अतः वह परम्परागत रमणीत्व को तिलांजलि देकर सुखी हो सकती है। परन्तु वह आदिम नारी की दुर्बलता—(वस्तुतः वह स्वाभाविकता ही है) को नहीं छोड़ सकी है। शृंगार के इतने

संख्यातीत उपकरण, रूप को स्थिर रखने के इतने कृत्रिम साधन, आकर्षित करने के उपहास योग्य प्रयास इस विषय में कोई संदेह का स्थान नहीं रहने देते। वस्तुतः नारी का रमणीत्व नष्ट नहीं हो सका, चाहे उसे गरिमा देने वाले गुणों का विनाश हो गया हो।......बाहर के संघर्षमय जीवन में जिस पुरुष को नीचा दिखाने के लिए वह सभी क्षेत्रों में कठिन से कठिन परिश्रम करेगी, उसी पुरुष में नारी के प्रति जिज्ञासा जागृत रखनेके लिए वह अपने सौंदर्य और अंग-सौष्ठव के रक्षार्थ असाध्य से असाध्य कार्य करने के लिए प्रस्तुत है।" क्या इस विवशता के बाद भी वह स्वतंत्र कही जा सकती है।

मैं नहीं जानती कि तुम इस गंभीर चर्चा में कहाँ तक रस लोगी, लेकिन पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है। यदि नारी का कार्य-क्षेत्र निश्चित हो, तो उसका पारिवारिक जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। यदि पुरुष व पत्नी दोनों ही बाहरी कार्य-क्षेत्र में काम करें, तो गृह-सुख, जीवन के रस और उससे बढ़कर संतान के सर्वांगीण विकास पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। चित्रांगदा की तरह नारी का स्वभाव पुरुष से अभिभूत होने में ही है, इस को प्राचीन नारी ने आत्म-समर्पण का नाम दिया था और इसी में वह संतोष मानती थी। वह अधिकार के ऊपर कर्तव्य को स्थान देती थी।

आनन्द आत्मसमर्पण में है न कि अधिकारों के लिए संघर्ष में। यह ठीक है कि पुरुष ने स्त्री के इस गुण का दुरुपयोग किया है और उसे पददलित कर दिया है। इसकी प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक है, लेकिन वह प्रतिक्रिया नारी का स्वभाव और धर्म नहीं बन जाना चाहिए। इसलिए मेरी अपनी निश्चित सम्मति है कि नारी को अपना मुख्य कार्य-क्षेत्र घर ही बनाना चाहिए।

लेकिन आज के संघर्षमय संसार में, मैं जानती हूँ कि केवल इस तरह का आदर्श समस्या को हल नहीं कर सकता। आजकल रहन-सहन बहुत खर्चीला है और मध्यम श्रेणी का प्रत्येक व्यक्ति सब खर्च नहीं उठा सकता। गृहस्थ में पैसे का महत्त्व कम नहीं है, इसलिए यह कभी कभी आवश्यक हो जाता है कि पत्नी भी अर्थोपार्जन में सहयोग दे। उस समय भी यह आवश्यक है कि वह कोई ऐसा कार्य अपने हाथ में न ले, जिससे पारिवारिक जीवन का सुख ही नष्ट हो जाय। वह किसी विद्यालय में शिक्षण का कार्य कर सकती है, घर पर एक दो ट्यूशन भी कर सकती है साहित्यिक रुचि की हो तो पत्र-पत्रिकाओं में लेख व कहानियाँ भेज सकती है। महिला-साहित्य व बाल-साहित्य के निर्माण में वह अधिक उपयोगी हो सकती है। चिकित्सा का क्षेत्र भी एक सीमा तक उसके लिए स्वागत योग्य हो सकता है। इस क्षेत्र में नारी-सुलभ समवेदना और कोमलता उसे सफल बनाने में सहायता दे

सकती है। यदि पति कोई ऐसा व्यापार या व्यवसाय करता है, जिसमें पत्नी उसे सहयोग दे सके, तो यह भी बहुत अच्छा कार्य हो सकता है। घर में बैठे कपड़े सीने, स्वैटर बुनने, या और छोटे मोटे घरेलू धंधों से भी कमा सकती है। और आर्थिक दृष्टि से कमाने की अपेक्षा बचत के अनेक उपाय निकाल कर वह पति को अधिक सहायता दे सकती है। मैं यह मानती हूँ कि नारी शक्तिहीन और अबला नहीं है। इस महायुद्ध में नारी ने प्रत्येक कार्य को इतनी उत्तमता से किया है कि उसे अबला कहना एक 'भारी असत्य' हो गया है। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में भी नारी ने जिस महान् शक्ति का परिचय दिया है, उससे समस्त भारतीय समाज विस्मित हो उठा है। इसलिए मैं यह कह कर नारी का अपमान नहीं करना चाहती कि विविध सार्वजनिक क्षेत्रों में या अर्थोपार्जन में पुरुष से वह किसी तरह हीन है। लेकिन इसके बावजूद मैं यह अवश्य कहना चाहती हूँ कि उसका मुख्य कार्यक्षेत्र घर है, इसलिए उसे घर के बाहर जो भी काम करने हों वे उसके घरेलू जीवन से टकराते न हों। श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपनी कवित्वपूर्ण भाषा में इसी विचार को इस भाँति व्यक्त किया है—"हमें आज ऐसी स्त्रियों की आवश्यकता है, जो आकाश के मुक्त वातावरण में स्वच्छंद भाव से अधिक से अधिक ऊँचाई तक उड़ने की शक्ति रख कर भी बसेरे को प्यार करने वाले पक्षी के समान, कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र, परन्तु

घर के आकर्षण से बँधी हो।" बाहर के कार्यक्षेत्र में काम करने का परिणाम घरेलू जीवन पर नहीं पड़ना चाहिए।

इस स्थिति के लिए नारी का कर्तव्य और भी बढ़ जाता है। वह जहाँ बाहर काम करे, वहाँ घर की ओर से उदासीन भी नहीं होना चाहिए। अपने घरेलू कार्य के लिए वह नौकर रख सकती है, लेकिन उसे यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि घर की जिम्मेवारी उसी की है। पति की सब आवश्यकताओं की पूर्ति उसे ही करनी है। घर और बाहर दोनों में एक किसान स्त्री की तरह उसे समन्वय करना होगा। इसके बिना पारिवारिक जीवन नष्ट हो जायगा। लेकिन ऐसा करने के लिए नारी को अपना जीवन और भी अधिक व्यवस्थित व नियमित करना होगा। यदि ऐसा वह नहीं कर सकती, तो ३०–४० या कुछ अधिक रुपयों के लिए घर में सदा चखचख मोल ले लेना बहुत अधिक महँगा सौदा सिद्ध होगा।

मैंने इस पत्र के प्रारंभ में श्री रवीन्द्र के चित्रांगदा नाटक की चर्चा की थी। चित्रांगदा ने अपने सौंदर्य के द्वारा अर्जुन का मन मोह लिया था, लेकिन वह सौंदर्य तो सदा साथ नहीं देता। इसलिए अपने गुणों के द्वारा वह उसे अपना प्रेमी बना लेती है। वह कहती है—

चित्राँगदा हूँ मैं। न मैं देवी हूँ, न रमणी—
साधारण। पूजा कर शीश में चढ़ाओगे
सो भी मैं नहीं हूँ, अवहेलना से रखोगे

पीछे—पालितों में वह भी मैं नहीं। पार्श्व में
रखो मुझ को सदा संकट के मार्ग में,
अंश यदि दुरूह चिन्ता का, सहायता
कठिन तुम्हारे व्रत की जो करने की दो
आज्ञा, मुझे दुखसुख की करो जो संगिनी
जानोगे मुझे तो—

नारीत्व और पत्नीत्व का सुन्दर समन्वय सहधर्मिणी शब्द में है। नारी न शीश पर रखने की वस्तु है, न पालितों के समान कोई निर्बल असहाय वस्तु। वह है सुखदुख की संगिनी, चिन्ताओं का भार लेने वाली, व्रत में सहायता करने वाली, सच्चा सहधर्मिणी, वस्तुतः आज स्त्री केवल रमणी या भार्या नहीं, वह घर के बाहर भी समाज का एक अंग तथा महत्त्वपूर्ण नागरिक है। लेकिन दूसरा भाग पहले से अधिक महत्त्व भी नहीं रखता, यह सत्य हृदयंगम कर लेने की आवश्यकता है।

तुमने मुन्शी प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' पढ़ा होगा। उसी की एक बात लिखकर पत्र समाप्त करती हूँ। उससे यह मालूम होगा कि पति कैसी पत्नी चाहता है। और पारिवारिक जीवन के लिए पत्नी कैसी होनी चाहिए। मालती सुशिक्षित और परिष्कृत रुचि की महिला है, खुला मिजाज और रोशन खयाल। स्वयं अर्थोपार्जन करती है। मेहता से पूछा गया कि मालती से शादी कब करोगे उन्होंने जो

जवाब दिया, वह पति के मनोभाव का अच्छा प्रतिबिम्ब है। उन्होंने नकार में उत्तर देते हुए कहा कि मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह उसमें नहीं है। मेरे जेहन में औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है, जो अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है।... स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति-संपन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं। तो वह महात्मा बन जाता है, नारी में पुरुष के गुण आजाते हैं तो कुलटा बन जाती है। पुरुष आकृष्ट हो जाता है उस स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो।"

वस्तुतः घर में जिस महान त्याग की आवश्यकता होती है, उसमें अपने को असमर्थ पाकर आज की अधिकांश नारियाँ घर के बाहर जाने लगी हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में "गृह की सीमा में उन से इतना अधिक त्याग और बलिदान माँगा गया कि वे उसके प्रति विद्रोह कर उठी।" और नये जीवन-संग्राम की ओर अग्रसर हुईं। यदि नारी स्वयं समझ-बूझ कर गृह-सुख का त्याग करे तो उसका महत्व कहीं अधिक है। मैं नहीं जानती कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर मैं अपने विचार दो पत्रों में भी स्पष्ट कर सकी हूँ कि नहीं। तुम्हारे विचार जानने की भी मुझे उत्सुकता है।

तुम्हारी

शारदा

भूलकर भी संदेह मत करो

प्रिय बहिन,

पिछले दिनों हमारे मुहल्ले में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। एक सुशिक्षित स्त्री ने आत्महत्या कर ली। वह मेरी भी परिचित थी। बड़े ऊँचे विचारों की, समझदार और मिलनसार, सदा प्रसन्नमुख रहती थी। लेकिन पिछले कुछ दिनों से वह अत्यन्त खिन्न और उदास रहने लगी थी। एक दिन प्रातःकाल सुना कि वह गले में फाँसी लगाकर मर गई। छोटे छोटे तीन बच्चे, एक तो दूधपीता है। उसका जब चेहरा याद आता है, तो हाथ का ग्रास मुँह में नहीं जाता। सब हैरान थे कि आखिर उसने आत्म-हत्या क्यों की। इतनी सुशिक्षित और समझदार थी। तीन चार दिन बाद भेद खुला। उसका एक पत्र लिखा मिला था। उस में लिखा था कि उस के पति ही उसे जब पसन्द नहीं करते, किसी और रमणी के लिए उनके

दिल में स्थान है, तब उसका जीवन व्यर्थ है। उसकी मृत्यु से उसके पति के स्वच्छंद प्रेम के मार्ग का काँटा भी निकल जायगा। इस चिट्ठी की भी हमारे मुहल्ले में खूब चर्चा रही। लेकिन दो चार दिन और बीते, तब हमारा दुःख यह जानकर और बढ़ गया कि अपने पति पर उसके संदेह का आधार बहुत मजबूत न था। एक मित्र के यहाँ वह बहुत जाने लगे थे, उसकी स्त्री से भी उनका परिचय हो गया था। वह भी मिलनसार थी। एक दिन उनके मित्र सिनेमा गये, उन्हें भी साथ ले गये, लेकिन न जाने किसी आवश्यक कार्य से वह मित्र तो बीच में से उठ गये, लेकिन अपनी पत्नी को कह गये कि तुम सिनेमा देखकर उनके साथ वापस आ जाना। सिनेमा-हाल से वह अपने मित्र की पत्नी के साथ बाहर निकले, यह समाचार किसी ने उस सुशिक्षित महिला तक पहुँचा दिया। बस, उस के दिल में संदेह ने घर कर लिया। फिर तो जब वह देखती कि उस के पति अपने मित्र के घर गये हैं, तब उसके संदेह को और पोषण मिलता। अन्त में वह इस दुःख को सहन नहीं कर सकी और एक दिन इस दुनिया से ही चल दी।

यह एक उदाहरण है, अपने जीवन-संगी पर संदेह करने की हानि का। न जाने कितनी स्त्रियाँ केवल इसी संदेह का शिकार होकर इस संसार से चल देती हैं। जो इस तरह मौत को नहीं बुलाती, वे दिल में घुल घुल कर जीर्ण-शीर्ण

हो जाती हैं। इसके विपरीत ऐसे बहुत से घर हैं, जहाँ इसी कारण विषाद या निराशा का स्थान क्रोध और प्रतिहिंसा ने ले लिया है। उनके घर में सदा अशान्ति और कलह का वातावरण बन जाता है।

मेरी एक और सहेली है। उसके पति एक सरकारी दफ़्तर में हैं। आजकल लड़ाई की वजह से दफ़्तर का काम-काज बहुत बढ़ गया है। वे शाम को देर से आते हैं। उनकी पत्नी रोज बड़े उत्साह से चौका-चूल्हा करती, लेकिन शाम हो जाती, तारे निकल आते, उन्हें घर न आया देख कर उसका उत्साह ठंडा हो जाता। वह रोज जल्दी आने का तकाजा करती, लेकिन नौकरी तो नौकरी है, वह न आ पाते। एक दिन की बात है, उनके कुछ मित्र घर पर आये हुए थे, पत्नी चाय 'सर्व' कर रही थी। मित्र गपशप मार रहे थे। एक मित्र बोले, "क्यों भाई, आज कल तो मजे में हो। दफ़्तर में ही मनोरंजन हो जाता है। पाँच पाँच तितलियों से रोज चुहलबाजी का मौका मिलता है, उनमें से एक वह गोरी गोरी तो तुम्हारे साथ की मेज पर…।" दुर्भाग्य की बात कि मित्र की पत्नी ने भी ये शब्द सुन लिए। उसका हृदय पहले ही कुछ खिन्न था, अब उसे अपने पति के देर से आने के संबन्ध में अनुमान करते देर न लगी। दफ़्तर में काम करने वालियों के कारण ही मेरे पति देर से आते हैं। बस, उस दिन से खिन्न और उदास रहने लगी। आदत चिड़चिड़ी हो गई। जब पति कोई बात करते, तो

तुनक कर जवाब देती। घर में एक अशान्ति और मुर्दनी छा गई. पति भी इस कारण खिन्न हुए, घर में उन्हें रस न रहा। वह और देर से आने लगे, पत्नी का संदेह और भी बढ़ता गया। बहुत दिन बाद पति को मालूम हुआ कि मेरे चरित्र पर पत्नी को संदेह है, तब वह उस के निवारण का प्रयत्न करने लगे, लेकिन दो मास और बीत गये। अब पत्नी को अपनी भूल मालूम हुई। अपनी ग़लती पर अब पछताती है।

यह मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह दूसरे व्यक्ति पर एकदम संदेह कर लेता है। हमारे हृदय में दृढ़ श्रद्धा या विश्वास की कमी है। फिर यह छलनामय प्रपंची संसार सदा दूसरों को आपस में लड़ा कर तमाशा देखने का आदी है। परनिन्दा का स्वभाव पुरुषों में और विशेष कर हम स्त्रियों में इतना अधिक है कि बात हो या न हो, किसी की आलोचना करने में हम खूब रस लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हम अपने उस जीवन-संगी तक पर संदेह करने लगते हैं जिसके साथ हम बरसों से एक सूत्र में बँधे हुए होते हैं. जिसके सुख-दुःख हमारे अपने सुख-दुःख हैं, और जो हमारे लिए प्रत्येक प्रकार का कष्ट उठाने को तैयार रहता है। मुझे एक ऐसा भी उदाहरण याद आ गया जिसमें एक पत्नी अपने पति पर इसलिए संदेह करने लगी थी कि उसके पति ने उसे दो चार बार यह समझाने की कोशिश की थी कि वह बहू को बहुत

अधिक न सताया करे, वह अभी नासमझ है और घर में आये हुए अभी एक डेढ़ माह ही तो हुआ है। उसके दिमाग़ में यह विचार आते देर न लगी कि मेरा पति अपनी पुत्र-वधू को बुरी नज़र से देखता है। वस्तुतः यह संदेह का बीज एक बार अंकुरित होकर फिर नष्ट होने का नाम नहीं लेता और यदि कभी नष्ट भी होता है, तो सारे घर को उजाड़ कर या उसकी शान्ति नष्ट कर। इसलिए किसी भी गृहस्थ के लिए चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, यह आवश्यक है कि वह अपने जीवन-संगी के प्रति अपने हृदय में सन्देह का ज़रा सा भी बीज पैदा न होने दे।

बहुत दफ़ा ऐसा भी होता है कि जब हमारा जीवन-संगी सचमुच अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है, और वह सच्चरित्र नहीं रहता। ऐसी स्थिति में दूसरा जीवन-संगी यदि यह समझे कि उसका राज्य नष्ट हो गया, वह आधार ही गिर गया जिस पर वह सुख-स्वप्नों का महल बनाती थी और यह सोचकर वह उस सुशिक्षित महिला की तरह खिन्न रहने लगे, क्रोध में आकर अपने जीवन-संगी से लड़ने-झगड़ने लगे, अथवा स्वयं भी जीवन-संगी के साथ विश्वासघात करने पर उतारू हो जाय, तो यह अस्वाभाविक न होगा। सचमुच अपने जीवन-संगी की सब बातें सहन की जा सकती हैं, लेकिन उसके हृदय-मन्दिर में किसी दूसरे की प्रतिमा की कल्पना करते ही दिल टूट जाता है या क्रोध से पूर्ण हो जाता

है। ऐसी स्थिति में विवेक नष्ट हो जाता है।

ऐसे ही समयों में बुद्धि और धैर्य की प्रतीक्षा होती है। इसलिए पहली बात यह है कि अपने जीवन-संगी पर अविश्वास या संदेह मत करो और इसके लिए भी हमें अपना आदर्श "सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमा पदां पदम्।" को बना लेना चाहिए। कहते हैं कि इस श्लोक के कर्ता भारवि ने यह श्लोक एक सेठ को सुनाया था। उसने यह श्लोक लिखवा कर अपने कमरे में टाँग दिया था। इसके बाद वह व्यापार के लिए विदेश चला गया था। करीब ८-१० साल बाद घर लौटा। पत्नी को कोई सूचना न थी। सेठ अचानक घर आकर देखता है कि उसकी स्त्री किसी युवक के साथ एकान्त में चारपाई पर बैठी बातें कर रही थी। क्रोध से वह लाल हो गया और तलवार से उसका सिर उतारने ही वाला था कि दीवार पर टँगे उक्त श्लोक पर उसकी दृष्टि चली गई। तलवार म्यान में कर ली और पूछा कि यह युवक कौन है। पत्नी ने पुत्र को कहा—देख तेरे पिता जी आये हैं, इन्हें प्रणाम कर। सेठ को भूल मालूम हुई, सन्देह का बादल उड़ गया और कहते हैं कि उस श्लोक के कर्ता कवि भारवि को बुलाकर सेठ ने एक लाख की सम्पत्ति दी। इसी के कारण तो वह पत्नी की हत्या से बच गया। वस्तुतः इस श्लोक में जो सचाई है, उसका यदि हम पालन करें, तो घरों में होने वाली बहुत सी ग़लत-फ़हमियाँ और अवांछनीय घटनाएँ हुआ ही न करें। "जो

उतावला सो बावला।" उतावलापन हमें क्रोध में पागल बना देता है।

गृहस्थ में स्त्री और पुरुष के अधिकांश हित एक से होते हैं। दोनों बालकों का हित चाहते हैं और उसी उद्देश्य से बातें कर रहे होते हैं कि ज़रा से दृष्टिकोण या विचार का भेद एकदम तीव्र कलह में परिणत हो जाता है। सहनशीलता और दूसरे के विचार का आदर करने की कमी, जल्दबाज़ी और क्रोध आकर सारे गृह-सुख को नष्ट कर देते हैं। परस्पर संदेह करने की प्रवृत्ति तथा क्रोध हमारे विवेक को हर लेते हैं।

प्रत्येक स्त्री को यह नियम सदा अपने हृदय में बाँध कर रखने चाहिए—

(१) कभी अपने जीवन-संगी पर अविश्वास या सन्देह न करे। यदि दुर्भाग्यवश कभी पति बुरे मार्ग पर चला भी जाय, तो जीवन से निराश न होकर मंगलमय भगवान् से उसके सुधार की प्रार्थना करनी चाहिए और यह सोचना चाहिए कि किस तरह उसका पति सुधर सकता है। इसमें समय लग सकता है। लेकिन सच्ची साधना और व्यवहार-कुशलता से पति पर विजय प्राप्त की जा सकती है। दिल में चिन्ता से घुल-घुल कर मरने से न अपना लाभ होता है, न पति का।

(२) कभी क्रोध में आकर पति की बातों का उलटा अर्थ मत लगाओ। वह कोई बात कहे, तो उसे चुपचाप सुन लो और जल्दबाज़ी में कोई जवाब न दो। हर एक बात का ऐसा

पहलू हो सकता है जिस पर तुम्हारी नजर न गई हो। यदि कभी संतोष न हुआ हो तो उस समय छोड़कर किसी दूसरे समय पति से चर्चा कर लो।

(३) संदेह, जल्दबाजी, अविवेक और क्रोध पारिवारिक जीवन के सबसे बड़े शत्रु हैं।

अपने गृहस्थ जीवन पर एक दृष्टि

प्रिय बहिन,

आज सवेरे उठी तो कैलेण्डर में १६ अप्रैल की तारीख पर नज़र पड़ते ही एक विचार हृदय में आया कि आज ही तो मेरा विवाह हुआ था। बस, इस ख़याल के आते ही फिर तो अपने इस दीर्घ कालीन विवाहित जीवन के चित्र, एक के बाद एक, सामने आने लगे और मैं इसी अवस्था में एक घण्टे तक बिस्तरे पर बैठी रही।

कितना लम्बा है यह जीवन। आज से २० साल पूर्व मैं अल्हड़ बालिका सी थी और मेरे माता-पिता ने मेरा विवाह कर दिया था। कितने अच्छे थे वे मस्ती के दिन। मेरे सौभाग्य से मेरे जीवन-सहचर जैसा मैं चाहती थी वैसे ही थे। प्रारंभ में विवाह का अर्थ मैंने समझा था हँसी-खुशी, मौज-बहार, शृंगार, बढ़िया कपड़े और जेवर, नौजवान, सुन्दर और बलिष्ठ

साथी के साथ आनन्दमय जीवन। घर की कोई ज़िम्मेवारी न थी, सिर्फ़ एक चिन्ता रहती कि कहीं सास-सुसर अप्रसन्न न हो जावें। जो चीज़ चाहती पतिदेव दूसरे दिन ला देते।

कुछ समय बाद। तुम्हारा बड़ा भांजा आया। अब घर की ज़िम्मेवारी महसूस होने लगी। माता का प्रेम माँ ही जान सकती है। बच्चे के लालन-पालन में सारा दिन बीतने लगा। मुझे वह दिन भी याद आया, जब कि तुम्हारे जीजाजी को पानी देने में एक घण्टा देर हो गई, मैं बच्चे से खेल रही थी या उसे स्नान करा रही थी। बस, उनका चेहरा रौद्र रूप धारण कर उठा, और वह घर से पानी बिना पिये ही चले गये। मैं कितना कहती रही, पानी लीजिये, लेकिन वे चले गये और फिर बड़ी देर रात को आए। उन्होंने उस रात भोजन भी नहीं किया। उस दिन सचमुच मुझे उन पर क्रोध आया। क्या बच्चा उनका नहीं है? लेकिन अब समझती हूँ कि पुरुष का यह स्वभाव है कि वह अपने और अपनी पत्नी के बीच में अपनी सन्तान को भी व्यवधान के रूप में देखना सहन नहीं करता। वह पहले अपनी सेवा चाहता है और फिर अपने बालक की। पुरुष का यह स्वभाव अच्छा हो या बुरा, इससे मुझे बहस नहीं। पुरुष जैसे भी हैं, उन्हीं के साथ हमें तो निबाहना है, और इसके लिए हमें अधिक सावधानता और सतर्कता के साथ काम लेना ही होगा।

इसके बाद विवाहित जीवन के सुख-दुःख के चित्र स्मरण हो

आये। सास को प्रसन्न रखना अधिक कठिन जान पड़ने लगा, मैं घर के काम-काज और बच्चों के लालन-पालन में उलझती गई। घरेलू समस्याएँ अधिक विकट और स्पष्ट रूप लेकर सामने आने लगीं। बीच बीच में ऐसे समय भी आये, जब तुम्हारे जीजाजी मुझ से नाराज़ हो गये, घर से खिन्न रहने लगे। मेरा अपना चित्त भी अत्यन्त खिन्न रहता।

एक दिन मैंने जब दूसरी स्त्रियों से उन्हें हँस कर बातें करते देखा, तो मैं आग-बबूला हो गई। मुझे आज भी वह दिन स्मरण है। मैंने उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्हें शायद इसकी आशंका भी न थी। उनका चेहरा एकदम पीला पड़ गया। सिर्फ़ एक बात कहकर वह घर से बाहर चले गये— ज़रा अपनी शक्ल-सूरत और कपड़े-लत्ते तो देखो। इसके बाद वह दफ़्तर से ही यह सूचना देकर लाहौर चले गये कि उन्हें कोई जरूरी काम है। मैं समझ गई, लाहौर में कोई काम नहीं, सिर्फ़ मुझसे नाराजगी है। वह शायद चार दिन बाहर रहे। लेकिन इन चारों दिनों मेरी तबीयत कैसी रही, यह मैं ही जानती हूँ। शायद तुम भी मेरे दुःख की कल्पना कर सकोगी। दिन रात हर समय उनके वे ही शब्द मेरे कानों में गूँजते रहते। अपनी शक्ल-सूरत पर मुझे बहुत गर्व नहीं है, लेकिन इतना मैं जानती हूँ कि मैं बदसूरत नहीं हूँ। उन दिनों तो उम्र भी अधिक न थी। माँ मेरे सुन्दर चेहरे पर, किसी की नज़र न लग जाय इसलिए काला टिका लगा दिया करती थी। वह

स्वयं भी मेरे रूप की प्रशंसा करते न थकते थे। तब उन्होंने मेरी शक्ल-सूरत पर क्यों ताना मारा? जिन स्त्रियों से वह बातें कर रहे थे, उनमें से तीन की शक्ल-सूरत तो मैं आज भी—१५ साल बीत गये इस बात को—कह सकती हूँ कि अत्यन्त साधारण थी। फिर वह यह कैसे कह गये—'ज़रा अपनी शक्ल-सूरत और कपड़े तो देखो।' इसी सोच में रहती, तीसरे दिन मैं अपने और उन स्त्रियों के चेहरों की तुलना करने के लिए बड़े आइने के पास खड़ी हो गई। सच कहती हूँ, उस दिन जैसी घृणा अपने से मैंने कभी नहीं की। देखा—रूखे उलझे हुए बाल, बहुत ही साधारण कपड़े जिन्हें कपड़े नहीं कहा जा सकता, मुँह पर झाइयाँ और सूखापन; सौंदर्य, और माधुर्य का नाम न था। मेरा सारा गर्व काफूर हो गया। सोचा कि मैं स्वयं अपने से ही घृणा करती हूँ, तो वे क्यों न करें? बहुत दिनों से मैं कभी शृंगार नहीं कर पाई थी, बढ़िया कपड़ों के ट्रंक कभी खोले न थे। चेहरे पर रूखापन और इसके साथ अपनी बातचीत में रस का भी अभाव मैं अनुभव करने लगी। तरह तरह की चिन्ता और चिड़चिड़ेपन के कारण मेरा स्वास्थ्य और उसके साथ चेहरे की रौनक जवाब दे रही थी। अपने दर्प के साथ क्रोध भी दूर हो गया। अब मैं अपने को ही अपराधी मानने लगी। जिस दिन वह घर आये, मैंने अच्छी तरह शृंगार किया, मुस्कराते हुए उनका स्वागत किया। शायद बहुत दिनों बाद मुझे पुराने रूप में देखकर वह प्रसन्न हो गये। तब मैंने अनुभव

किया कि पुरुष सदा स्त्री को नवविवाहित पत्नी के रूप में देखना चाहता है। वह कितने ही बालकों की माँ बन जाय, लेकिन पति उसे रमणी और अपनी पत्नी के रूप में ही देखने को उत्सुक रहता है। यह चाहे उसका अहंकार हो, स्वार्थ हो, लेकिन है यह उसका स्वभाव और पारिवारिक जीवन की प्रसन्नता के लिए हमें इसके इस स्वभाव की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

एक वह दिन भी याद आया, जब उन्होंने मेरा ध्यान फिर इस ओर आकृष्ट किया था। शायद मैं तुम्हें कभी लिख भी चुकी हूँ। पिताजी के स्वर्गवास और बच्चों की बीमारियों के चक्र में परेशानी से तमाम हँसी-खुशी लुप्त हो गई थी, जीवन में जैसे उत्साह का नाम भी न था। सदा ग़मगीन रहती, सारे घर भर में उदासी छायी रहती। तब एक दिन उन्होंने शोक को भूल जाने और सदा प्रसन्न रहने की जो सलाह दी थी, वह भी मुझे अब तक याद है। इसके बाद तो मैंने यह नियम सा बना लिया है कि सदा प्रसन्न रहूँ। दुःख आते हैं, कभी कभी किसी छोटी-बड़ी बात पर कहा-सुनी भी हो जाती है, लेकिन उसे जल्दी से जल्दी भूलकर फिर प्रसन्न हो जाने से जीवन में जो आनन्द है, वह अपने आप देर तक कुढ़ने और घर भर में मनहूसी का वातावरण बनाए रखने में कहाँ ?

एक दिन और भी याद आया। उस दिन भी मैं किसी बात पर उनसे रुष्ट थी। वह दिन शायद मेरे अत्यन्त दुर्भाग्य का था। वह साईकिल-ताँगा दुर्घटना के शिकार हो गये। घर आये

तो बेहोश थे। उनके कुछ मित्र उन्हें लाये थे। उन्हें उस दशा में देखकर मैं नहीं कह सकती कि मेरी दशा क्या थी। उनका जीवन संकट में था। मैं उनकी सेवा में लग गई, मैंने दिन देखा न रात, प्रति क्षण उनकी सेवा। तीन रात मैं एक मिनिट के लिए भी न सोई। वह आराम करने के लिए कहते, पर मैं हँस कर टाल देती। मंगलमय भगवान की कृपा हुई, उन्होंने मेरी पुकार सुन ली। वह स्वस्थ हो गये। मैंने सारी गली में लड्डू बाँटे। लेकिन मैं यह महसूस करती हूँ कि इस घटना के बाद उनका स्वभाव और भी अधिक कोमल तथा दयालु हो गया। मेरी सेवा समझो या कोई और कारण, अब वह पहले सा कभी खीजते नहीं, सदा मेरी प्रशंसा करते रहते हैं। इस प्रशंसा में यौवन की उच्छृंखलता नहीं होती, लेकिन गंभीरता और सचाई ज्यादा होती है। वह जब कहा करते हैं कि तुमने अपनी सेवा और सच्ची मंगल-कामना से मुझे जीवन-दान दिया तो मैं शर्म से गड़ जाती हूँ और मन ही मन जहाँ उनकी कृतज्ञता के लिए प्रशंसा करती हूँ, वहाँ उन्हें 'वह तो परमात्मा की कृपा थी' कह कर टालने का प्रयत्न करती हूँ।

विवाह के प्रारंभिक वर्षों में जो सुख, यौवन का आनन्द और मस्ती थी, वह आज नहीं है। उसे देखने के लिए आज भी दिल चाहता है, यद्यपि अब वह संभव नहीं है। घर की जिम्मेवारियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि जीवन दुःखी है। आनन्द का स्थान सन्तोष

ने, उच्छृंखलता और तुनुकमिजाजी का स्थान धैर्य ने एवं उत्साह का स्थान विवेक तथा बुद्धि ने ले लिया है। पहले जीवन-संगी के प्रति कामुकता का भाव अधिक था, अब हितैषिता ने उसका स्थान ले लिया है। संतान के लालन-पालन ने उनके प्रति ममता ही नहीं धैर्य भी प्रदान किया है और इसी में आज अपना जीवन अच्छा लगता है।

अरे, यह सब मैं क्या लिख गई। इतना लिखने की इच्छा न थी। लेकिन जब तुम्हें पत्र लिखने लगती हूँ, तब इच्छा होती है कि तुम्हें पत्र लिखती ही रहूँ, पर अब बस करती हूँ। मैं लिख चुकी हूँ कि आज हमारे विवाह का दिन है, अभी हमें हवन करना है। वह इस दिन को उत्साह के साथ मनाया करते हैं। कहते हैं कि इस दिन को मनाने से ऐसा मालूम होता है कि अभी हमारा नया विवाह हुआ है, फिर जीवन की आनन्दमय स्मृतियाँ और पुराने सुनहले स्वप्न आकर जीवन को मधुर बना जाते हैं और हम दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होने का व्रत नये सिरे से लेते हैं। मैं अपने सौभाग्य को अखण्ड बनाये रखने की मंगलमय भगवान से प्रार्थना करती हूँ। अब उठूँ और हवन आदि की तैया-रियाँ करूँ।

यह जानकर तुम प्रसन्न होगी कि तुम्हारे दोनों भाँजे अपनी परीक्षा में पास हो गये हैं और मुन्नी अपनी कक्षा में सर्व प्रथम आई है। बधाई हो। बच्चों को प्यार। उनका

परीक्षा-परिणाम भी तो निकल आया होगा। हो सके तो कुछ दिन के लिए यहीं आ जाओ, नहीं तो बच्चों को अवश्य भेज दो। इन गरमियों में किसी पहाड़ पर जाने की इच्छा है। तुम्हारा साथ होने से बहुत आनन्द आयगा। अवश्य आना।

तुम्हारी हितैषिणी

शारदा

गृहस्थ जीवन के तीन अनुभव

प्रिय बहन,

इन दिनों मैं मंसूरी में हूँ। कई साल से गर्मियाँ इसी पहाड़ पर बिताने का विचार कर रही थी। लेकिन कोई न कोई काम आ ही जाता था। अब जाकर किसी तरह काम को धकेल कर—उससे पीछा छुड़ाकर यहाँ निकल आई हूँ। तुम्हें भी तो बुलाया था, तुम आ जातीं तो इस यात्रा और मंसूरी-निवास का आनन्द दुगना हो जाता। लेकिन इस संसार के काम किसी तरह पीछा नहीं छोड़ते। मैं देखती हूँ कि और भी तो हज़ारों लोग सैर-सपाटे के लिए समय निकाल लेते हैं। निश्चिन्त होकर अपने मनोरंजन के लिए समय निकाल लेना भी एक कला है। जीवन में कहीं मनोरंजन न हो, विविधता न हो तो यह एक भार सा बन जाता है। काम हमारे लिए है, न कि हम उसके लिए। हम उसके पीछे पड़

जायँगे, तो वह हमें कभी नहीं छोड़ेगा। जीवन में सरसता लाने के लिए उसमें विविधता लाना और आराम करना आवश्यक है। आराम का अर्थ सुस्ती नहीं है, दिल-बहलाव और स्वस्थ मनोरंजन तथा स्वास्थ्यप्रद स्थानों की यात्रा है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि "वेरायटी इज़ दी स्पाइस आफ़ लाइफ़" विविधता में ही जीवन का आनन्द है। शायद इसी कारण हिन्दू जाति के नेताओं ने वर्ष में इतने अधिक त्योहारों की सृष्टि की थी। ये त्योहार हमारे जीवन में विविधता लाते हैं। उसकी एकरसता को नष्ट कर देते हैं और हमारे जीवन को सप्राण एवं आनन्दमय बना देते हैं। जलवायु-परिवर्तन से जैसे अनेक बीमारियाँ दूर हो जाने की बात डाक्टर कहते हैं, उसी तरह जीवन के वैविध्य और नये जीवन-क्रम से गृहस्थ जीवन की अनेक कटुताओं तथा पारस्परिक अप्रियता का भी विनाश हो जाता है। इसीलिए मैं पहाड़ों तथा अन्य स्थानों की यात्रा को महत्त्व देना चाहती हूँ।

यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों की चर्चा क्या करूँ? तुम भी तो दो बार मंसूरी देख चुकी हो। यहाँ मेरी एक सहेली रहती है। उसके बहुत आग्रह पर मैं उसी के पास रहने लगी हूँ। बातचीत और आतिथ्य में वह बहुत अच्छी है। उसी के साथ रोज घूमने जाती हूँ। बच्चे अपने पिताजी के साथ जाते हैं। उसके निरंतर आग्रह के बावजूद मैंने भोजन की पृथक् व्यवस्था कर ली है। किसी पर अधिक भार डालना उचित नहीं होता।

समय मिलते ही वह मेरे पास आ जाती हैं। बातचीत में एक दिन अचानक मालूम हुआ कि उसका घरेलू जीवन शायद वैसा स्वस्थ नहीं है। वह पति के साथ बहुत हँसकर बातें नहीं करती। बीच में तो स्थिति बहुत ही खराब हो गई थी। वह १५-२० दिन तक घर ही नहीं आये, अपनी कपड़े की दूकान पर सोते थे, वहीं खाना मँगवा लेते थे। पानी भी दूकान पर स्वयं भरते थे। बस, घर से उनका एक ही संबंध था कि बालक के हाथ साग-सब्ज़ी आदि ज़रूरी चीज़ें घर भिजवा देते। मैं यह सुनकर दंग रह गई। ऐसी भी नाराज़गी क्या? वास्तविक कारण क्या था, वह तो परमात्मा जाने, लेकिन मैंने उसकी सहेलियों से सुना कि इसमें स्त्री का ही अधिक दोष था। शायद कुछ पति की तुनुकमिजाजी का भी। बात यह थी कि उनकी लड़की का विवाह था। वह इसे खूब शान-शौकत से करना चाहती थी और लड़की के पिता कुछ अवस्थाओं से संभवतः ऐसा न करने को विवश होंगे। वह रोज़ आग्रह करती कि इतना अनाज, घी और चीनी का प्रबन्ध कर दो, इतने रेशमी कपड़े और इतने ज़ेवर तथा अन्य फर्नीचर मँगा दो। उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की, पर उसके तकाज़े बराबर बढ़ते गये। बातचीत में कभी कभी कटुता भी आ जाती। भोजन का समय हो, या सोने का, सबेरे-शाम तकाज़े दिन भर में और कोई बात ही नहीं होती। पति की असमर्थता को वह उनके पौरुष, परिश्रम और योग्यता की

लक्ष्मी के रूप में देखती थी और कोई भी पत्नी पति में इन गुणों का अभाव देख कर खीज उठती है। बस, बातें बढ़ती गईं और इस से जान बचाने के लिए अपनी पत्नी के सामने न आने का इन्होंने फ़ैसला किया और घर आना ही छोड़ दिया। २० दिन तक यही क्रम रहा। इन्होंने अच्छा किया या बुरा, इस बहस में मैं नहीं जाना चाहती। लेकिन बार बार के तकाज़ों ने उनका जीवन दुःखी कर दिया। अपनी असमर्थता से उत्पन्न निराशा भी इसके मूल में होगी। लेकिन पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह बात वहीं तक बढ़ाए, जहाँ तक उस में कटुता पैदा न हो। यों किसी भी माँ का दिल अपनी संतान के लिए सब कुछ देने का होता है। यह स्वाभाविक ही है, लेकिन अपनी माँग या तकाज़ों की सीमा अपनी सामर्थ्य से तो नहीं बढ़नी चाहिए। रस्सी को वहीं तक खींचना चाहिए, जहाँ तक वह टूट न जाय। लड़की का विवाह आनन्द के साथ होने के बजाय, उसमें कटुता और नीरसता आगई। यह तो कोई बात न हुई। इसलिए सदा अपने सामर्थ और पति की इच्छा दोनों का ध्यान रखना चाहिए। समय और पति का 'मूड' देखकर ही बात करनी चाहिए।

यहीं रहते रहते एक और घर में भी आना जाना शुरू हो गया। पति-पत्नी दोनों का स्वभाव अच्छा है, दोनों बड़े प्रेम से बातें करते हैं, हँसते रहते हैं, लेकिन इन सब के बीच मैंने—मैंने क्या, तुम्हारे जीजाजी ने—देखा कि पति के चेहरे

पर वेदना की छाया सी झलकने लगती है, जब वे घर की चर्चा करते हैं। किसी दिन ज़रा खुलने पर इन्होंने कहा कि पत्नी ने एक दिन ज़हर खा लिया। मामूली सी बात थी। एक पड़ोसिन से झगड़ा हो गया, बस क्रोध निराशा में परिणत हो गया। किसी से चर्चा किये बिना एक ज़हरीली दवा पी ली। घण्टे बाद घर आने पर उन्हें मालूम हुआ। चिकित्सा की गई। बच तो गई, लेकिन आज तक पूरी स्वस्थ नहीं हुई। ज़हर दिमाग़ पर असर कर गया है। बीच बीच में बहकने लगती है। इसके सिवा पुलिस ने आत्म-हत्या का एक केस अलग चला रखा है। उससे बचाव के लिए कितने ही रुपये खर्च कर चुका हूँ, लेकिन अभी तक छुटकारा नहीं हुआ। अब गृहस्थ का आनन्द कहाँ। बच्चों की फ़िक्र भी मुझे करनी पड़ती है। घर भी उस के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। उसका दिमाग़ ही सही-दुरुस्त नहीं है।

मैंने यह सब सुना तो हैरान रह गई। भला इतना भी क्रोध क्या ? सचमुच क्रोध मनुष्य को अंधा कर देता है। गृहस्थ जीवन के लिए तो क्रोध सब से तीव्र विष है। क्रोध का अर्थ है विवेक का नाश। मुझे पत्र लिखते हुए संस्कृत के महाकवि भारवि का एक श्लोक याद आ गया। शायद मैंने कभी पहले भी लिखा था। पुरानी कहावत के अनुसार उसकी कीमत लाख रुपये थी। वह श्लोक यह है—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ *

इस श्लोक के सम्बन्ध में एक सेठ की कहानी मैं पहले लिख चुकी हूँ। दर असल क्रोध को वश में करना स्त्री और पुरुष दोनों के लिए गृहस्थ सुख की दृष्टि से जरूरी है। यदि वह जहर न खाती, तो घर भर का जीवन इतना दुःखमय क्यों हो जाता?

सास के तानों या झगड़ों से दुःखी होकर तो अनेक स्त्रियों के आत्मघात-समाचार तुम पढ़ती रहती होगी। जरा एक बार सोचो तो सही कि वे तो अपने कष्टों से छुटकारा पा गई, लेकिन उनके पीछे परिवार की—पति को जाने दें, वह बहुत संभवतः शादी कर लेगा, लेकिन बच्चों की क्या दशा होगी, यह तुम कल्पना कर सकती हो। विमाता तो आकर उनके कष्ट का ही कारण बनती है। इसलिए क्रोध के वश में भी आकर कभी ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिस का फिर प्रतिकार असम्भव हो जाय। प्रत्येक स्त्री या पुरुष को ऊपर का श्लोक सदा अपने सामने एक प्रमुख ध्येय की तरह रखना चाहिए। क्रोध आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है, लेकिन उसे अपनी सीमा से किसी भी तरह बढ़ने नहीं देना चाहिए। मैं

* कोई कार्य उतावलेपन में नहीं करना चाहिए। अविवेक बड़ी बड़ी आपत्तियों का कारण है। सोच-विचार कर काम करने वाले के पास सम्पत्ति या सफलता उसके गुण से आकृष्ट होकर स्वयं आती है।

तो यहाँ तक कहना चाहती हूँ कि पति को दुराचारी देखकर स्त्री—जिस पर क्रोध चरम सीमा तक पहुँच जाना स्वाभाविक है—स्त्री को क्रोध में अन्धा होकर कभी आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। सहनशीलता के साथ निरन्तर प्रयत्न करना पति को सदाचारी बना देगा। आत्महत्या स्वयं भारी पाप भी है।

मंसूरी में एक और भी परिचित व्यक्ति के दर्शन हुए। उनको तुम भी शायद जानती हो। समाज के पास किराये के मकान में रहते हैं। मुझे तो बड़े सज्जन मालूम हुए, लेकिन उनकी पत्नी में वह बात नहीं थी। उसे मैंने कभी हंसते नहीं देखा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह हमें देखकर दिल में कुछ नाराज हो जाती थी। उसे शायद हमारा आना अच्छा नहीं लगता था। वह बातें तो करती थी, लेकिन केवल बाह्य शिष्टाचार-वश। एक दिन जब हम वहाँ से चलने लगे, तो उसके पति भी हमें कुछ दूर तक छोड़ने चले, घर से बाहर निकल कर वह उनसे बातें करने लगे—क्या कहूँ, मैं आपका स्वागत कुछ नहीं कर सकता। मेरी इच्छा तो बहुत होती है, लेकिन घरवाली ही कुछ इस प्रकृति की है कि मुझे लज्जित होना पड़ता है। मेरे परिचित मित्रों की संख्या बहुत है। मैं जब उनके यहाँ जाता हूँ, बड़े प्रेम से वे आदर करते हैं। मेरी बड़ी इच्छा होती है कि वह भी मेरे घर पर आवें, लेकिन वह इसी बात पर नाराज हो जाती है। एक मित्र मुरादाबाद रहते हैं, उन्होंने किसी तरह मेरी बड़ी सहायता की थी। मैं

उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा । उनकी लड़कियाँ मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए अपने शहर में पहुँची। मैंने उन्हें अपने घर ठहरा लिया। वे बहुत प्रसन्न हुईं, लेकिन एक दिन परीक्षा के बीच में ही किसी दूसरे स्थान पर डेरा डालने का यत्न करने लगीं। बहुत कुछ पूछने पर उन्होंने अत्यन्त संकोच के साथ कहा—चाचाजी, आप तो हम से प्रेम करते हैं, लेकिन चाचीजी, शायद हमारा रहना पसन्द नहीं करतीं। फिर मुझे यह भी मालूम हुआ कि स्नानगृह में हमारा तेल-साबुन इस्तेमाल करते देखकर घरवाली ने कहा कि—हम तो अपना तेल-साबुन रखना पसन्द करते हैं। डाक्टर लोग दूसरे का साबुन लेना हानिकारक बताते हैं। जब मैंने अपनी घरवाली को इसके लिए कहा तो बड़ी बेधड़क होकर बोली—'मेरा घर धर्मशाला तो नहीं है।' मै चुप रह गया। तब से मैंने यह निश्चय किया है कि मित्रों को स्वयं घर पर बुलाकर कभी अपना व मित्रों का अपमान नहीं कराऊँगा। उनकी आवाज़ में उनकी वेदना स्पष्ट झलक रही थी।

मैं यह सब सुनकर सोचने लगी कि कितने भले आदमी हैं, लेकिन घरवाली से कितने परेशान हैं। वह यह नहीं सोचती कि उसके पति या बालकों के साथ दूसरे भी यही रूखा व्यवहार करें, तो उसे कितना बुरा लगे। फिर घर केवल उसी का तो नहीं, घर के मालिक वह भी हैं, खर्च होता है तो उन्हीं का। सिर्फ उनका जी रखने की बात है। अतिथियों को हलुआ-पूरी

न खिलाओ, जो रूखा-सूखा भोजन अपने आप करते हैं, वही दो। यों तो मैं आतिथ्य को गृहस्थ जीवन को सुखी और प्रसन्न रखने के लिए आवश्यक अंग समझती हूँ। अतिथि आवे, उससे भी जीवन में एक विविधता पैदा होती है, घर में रौनक होती है, बच्चे भी उससे कुछ सीखते हैं, तरह-तरह की चर्चा का अवसर मिलता है। उसकी सेवा में एक प्रकार का आनन्द मिलता है। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि अतिथियों की सेवा में चित्त प्रसन्न रहता है। एक बात यह भी है कि यदि हम्हीं सेवा नहीं करते, तो हम स्वयं किसी के यहां आतिथ्य की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? हमारे शास्त्रों में तो कहा है कि यदि अतिथि किसी के घर से मुँह जूठा किये बिना चला जाता है, तो अपने सारे पाप वहीं छोड़ जाता है और गृही के पुण्य ले जाता है। इसमें अत्युक्ति होगी, लेकिन यह तो सच है कि पर-सेवा में भी एक विशेष प्रकार का आनन्द है। उससे गृहस्थ सुख बढ़ता है, मित्रों की वृद्धि होती है और वे मित्र किसी न किसी समय पर काम ही आते हैं।

बच्चों के पास होने का समाचार तुमने पत्र में दिया था। मैं बधाई देना ही भूल गई।

तुम्हारी हितैषिणी बहिन

शारदा

सन्तान की समस्या

प्रिय बहिन,

मैं मंसूरी से पिछले सप्ताह लौट आई, घर-गृहस्थी को फिर नये सिरे से जोड़ने में ८—१० दिन लग गये, तुम्हें पत्र न लिख सकी। कामकाज से छुट्टी ली थी, वहाँ चैन से थी। अब फिर वही सब काम। बहुत सवेरे उठती हूँ, काम मे जुट जाती हूँ, और काम शैतान की आँत की तरह लम्बा होता जाता है कि रात के १० बजे तक भी समाप्त नही होता। यह सोचकर सो जाती हूँ कि अच्छा, कल यह काम पूरा कर लूँगी, लेकिन कल भी गुज़र जाता है और काम समाप्त नही होता, नये नये काम निकलते आते हैं। किसी अंग्रेज़ी पत्र में पढ़ा था कि पुरुष का काम सूर्यास्त तक समाप्त हो जाता है, लेकिन गृहिणी का कार्य तो कभी समाप्त ही नहीं हुआ। परन्तु मैं यह अनुभव करती हूँ कि इस यात्रा से मुझे लाभ अवश्य

हुआ, स्फूर्ति आ गई और अब काम में थकान कम महसूस होती है।

कभी कभी सोचती हूँ कि लड़की को अपने घर पर माता-पिता द्वारा बुलाने का रिवाज इस दृष्टि से बहुत अच्छा था कि उसे कुछ समय आराम करने को मिल जाता था। इसका एक दूसरा लाभ भी था। आखिर सदा एक साथ रहने में स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण कुछ कम हो जाता है। स्त्री के बीच बीच में पीहर हो आने से वह आकर्षण फिर नूतनता प्राप्त करके बढ़ता रहता है। पुरुष उन दिनों स्त्री का वियोग अनुभव करता है और फिर मिलने की आनन्दमयी उत्सुकता में रहता है। बीच बीच का यह वियोग गृहस्थ जीवन में नव-रसता पैदा करता है और स्त्री जब अपने घर आती है, पति उसमें नूतनता पाता है। यदि कभी किसी बात पर मनमुटाव हो जाता है, तो वह भी इन वियोग के दिनों में वियोगाग्नि से झुलस जाता है। दोनों एक दूसरे की आवश्यकता को अधिक अनुभव करते हैं, एक दूसरे की त्रुटि की अपेक्षा उसके गुणों पर अधिक ध्यान जाता है।

तुम्हें खयाल होगा कि बहुत समय पहले मैंने तुम्हें एक विद्वान् पण्डितजी का हाल लिखा था कि उनकी पत्नी से बार-बार अनबन हो जाती है। उसका एक कारण यह भी था कि पत्नी के घर वाले उससे अप्रसन्न थे। वह बाल विधवा थी और उसकी जायदाद भाइयों ने हड़प कर ली थी। जब

उसने पुनर्विवाह किया तो इसी अपराध का बहाना बनाकर वह उसे कभी घर नहीं बुलाते थे। बीस साल हो गये, वह अपने पति से पृथक् नहीं हुई। सदा—वर्षों तक एक साथ रहते रहते आकर्षण में कमी आना स्वाभाविक है। बीच में शायद दो तीन महीने के लिए पण्डितजी को किसी काम से बाहर जाना पड़ा, पत्नी घर में अकेली रही। जब पण्डितजी वापस आये, तो उन्होंने जीवन में कुछ नूतनता, कुछ आकर्षण अनुभव किया। वह इसे समझ नहीं पाये। यही अवस्था उनकी पत्नी की हुई।

वस्तुतः गृहस्थ जीवन के आनन्द को नितनूतन बनाये रखने के लिए पत्नी का समय समय पर पिता के घर जाते रहना अच्छा है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि पिता के घर ही जाकर पड़ रहो। इससे न पिता के घर आदर होता है और न पति ही इसे अच्छा समझते हैं। मैं एक सहेली को जानती हूँ। जब वह अपने पीहर जाती है, चार पाँच महीने से पहले नहीं आती। आकर पिता के घर की बातें बहुत बनाती है। एक दिन मैंने उससे कहा—घर में तुमने तो पाँच महीने मजे से गुजार दिये, बहुत सा खर्च भी बचा लिया, लेकिन कभी यह भी सोचा कि यहाँ भाईजी की अवस्था क्या थी? होटलों की सूखी बेस्वादु रोटी खाते खाते वह परेशान हो गये। घर में सूनापन, बच्चे भी घर पर न थे।" दरअसल पति के दिल से वह बी उतर जाती है, जो अपने पतिगृह की अपेक्षा अपने पीहर

को अधिक महत्त्व देती हो। पति का घर चाहे कितना भी दरिद्र हो, माता-पिता के सुसंपन्न घर से ज्यादा अच्छा है।

मंसूरी से आते हुए रेलगाड़ी में एक बड़े पुलिस अधिकारी के अनुभव सुनने को मिले। वह भी हमारे ही डिब्बे में सवार थे। वह अपने किसी मित्र से बातें कर रहे थे। वह ५० साल से ऊपर के जान पड़ते थे, फिर भी स्वास्थ्य उनका अच्छा था। वह कह रहे थे—भाई, परमात्मा की दया और अपने सौभाग्य से मुझे सब तरह की सफलता मिली है। कहाँ ३०—४० रु० का नौकर था। आज एक बड़ा अफ़सर हूँ। मान-प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति, जिसका मैंने कभी स्वप्न लिया था, आज सब कुछ मेरे पास है। कुछ ज़मीन-जायदाद भी ख़रीद ली है। एक अच्छी कोठी है। स्त्री भी, मैं अभिमान नहीं करता, हज़ारों में एक है। बड़ी समझदार और नेक। परमात्मा की कृपा से स्वास्थ्य भी अच्छा रहा है। लेकिन इस उम्र में एक नयी चिन्ता ने ऐसा घेर लिया है कि जीवन एक पहाड़ हो गया है। बड़ा बच्चा बदमाशों की संगत में पड़ गया है। उसकी पढ़ाई-लिखाई पर कम ख़र्च नहीं किया, लेकिन बी० ए० की परीक्षा में तीन बरस से फेल हो रहा है। कुसंगति ने कई बुराइयाँ पैदा कर दी हैं। मेहनत से जी चुराता है, शराब-सिगरेट, सिनेमा का शौक़ बुरी तरह लग गया है। रोज़ शिकायतें सुनते-सुनते परेशान हो गया हूँ। जब देखता हूँ कि औरों के बच्चे माता-पिता के कहने में हैं, स्वस्थ हैं, कोई बुरा

व्यसन नहीं है, जो थोड़ा-बहुत मिलता है, उसी में गुजर कर लेते हैं, तो दिल में आता है कि मुझे भी परमात्मा ने जो कुछ दिया है, वह न देकर अच्छी संतान देता तो अधिक अच्छा था।" यही सब कथा कहते कहते उसकी आँखों में आँसू आ गये।

मैं सोचती हूँ कि सचमुच वह अभागा है, लेकिन इसकी जिम्मेवारी किस पर है? माता-पिता पर। वह लाड़-प्यार में पहले बच्चे की चिन्ता नहीं करते और पीछे जब वह समस्या बृहदाकार धारण करके सामने आती है, तो उसका कुछ इलाज नही रहता। पारिवारिक जीवन का केन्द्र सम्मान ही होती है। उसके बिगड़ जाने और हाथ से निकल जाने पर जीवन का समस्त आनन्द नष्ट हो जाता है। इसीलिए सन्तान पर बहुत प्रारंभ से ध्यान जाने की जरूरत है। बहुत से बच्चे सिनेमा में ज्यादा जाने से बिगड़ गये। कुसंगति का भी सदा ख्याल रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें भी सावधान करना चाहती हूँ। और क्या लिखूँ, तुम खुद समझदार हो।

सन्तान के निर्माण में हमें किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, यह मैं क्या लिखूँ? मैं जानती हूँ कि पारिवारिक समस्या में सन्तान-निर्माण का बड़ा भारी महत्त्व है। पर इसे विस्तार से लिखना मेरे लिए संभव नही है। मैं सिर्फ इस संबंध में तुम्हें साहित्य पढ़ने की सलाह दूँगी।

तुम्हारे पत्र से यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि पिछले

बरसों में मैंने विवाह और विवाहित जीवन के संबंध में जितने पत्र लिखे हैं, उन्हें तुमने संभाल कर रख लिया है। मैं तुम्हें राय दूँगी कि उन पत्रों को तुम अब भी पढ़ोगी तो कुछ न कुछ आज भी वे हितकर सिद्ध होंगे। इन पत्रों में मैंने न जाने समय समय पर उठने वाले किन विचारों को लिखा है और कितनी आवश्यक बातें मैं शायद लिख नहीं सकी, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनका पारिवारिक जीवन में महत्त्व न हो, फिर भी मुझे यह विश्वास है कि इन पत्रों में मैंने जो भाव रखे हैं, वह विवाहित जीवन में अधिक लाभकर होंगे।

विवाहित जीवन में, मुझे इस समय स्मरण नहीं कि मैंने किन नियमों का निर्देश किया है, लेकिन एक बात मैं इस पत्रावली के अन्त में फिर अवश्य कहना चाहूँगी कि विवाहित जीवन की सफलता आत्मसमर्पण में है, कर्तव्य-पालन में है, न कि अधिकारों की घोषणा में। पुरुष और स्त्री दोनों एक दूसरे के प्रति अपने को अनुकूल बनाने का प्रयत्न करें। इस सम्बन्ध में स्त्री का उत्तरदायित्व और उसके कर्तव्य ही ज्यादा नहीं हैं, लेकिन उसमें इसकी क्षमता भी अधिक है।

तुम्हारी हितैषिणी बहिन,

शारदा